॥ श्रीः ॥

उपदेशामृतघटी.

ॐ

श्रीभगवद्गीता अनुवाद

भाषा

महाराज साहबजी

श्री १०८ अजितसिंहजी बहादुरकी अज्ञानुसार बनाई

पण्डित गोपीनाथजीनें

जातिदाधीच अवटङ्कडेरोल्या

गोत्र काश्यप

रहणँवाला जयपुरका.

संवत् १९४० का विक्रमार्क.

मुंबईमें.
निर्णयसागर छापखानेमें छपे ॥

॥ उपोद्घात ॥

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

कृष्णेनाऽर्जुनशिष्याय योपदिष्टा कृपादृशा ॥
सा गीताऽजितभूपस्य भूयात्संशयभेदिनी ॥ १ ॥
उपदेशामृतघटी भवज्वरहरी वटी ॥
आनन्दवारिधितटी सद्ज्ञानरसदा नटी ॥ २ ॥

विदित हो कि इस कठिन कराल कलिकालके प्रभावतैं लोक निरन्तर धर्मतैं तथा ज्ञानतैं विमुख होय मोहान्धकारमैं पतित होय नानाविध अनर्थ करणेंमैं प्रवृत्त हो रहे हैं, ऐसे २ कर्म कर रहे हैं कि जिनतैं या लोकमैं तो परम निन्दा, ओर परलोकमैं अन्धतामिश्र कुम्भीपाकादि घोर नरकोंकी प्राप्ति होय, परन्तु, अब ही कलिकी सन्धिके वर्ष व्यतीत नहीं होणेंके कारणतैं कोई २ पुरुष उत्तम स्वभाव बी रखते हैं, यातैं धर्म तथा ज्ञानके लाभकी परम लालसा चित्तमैं धारण करते हैं, परन्तु, आर्यावर्त्तमैं ऐसा समय आगया कि एतद्देशीय महाराज चक्रवर्ती रहा नहीं, ओर परमेश्वरनैं उत्तम राजनीति साधन करतें देखि सरकारकूं यहाँका राज्य दिया, सो यहाँकी प्रजा सुरक्षित भई, दुष्टजनोंके उपद्रवोंसैं बची, ओर प्रतिदिन उन्नतिकूं प्राप्त होती जाय है, ओर यहाँ विद्याकी परम वृद्धि है, परन्तु, वो विद्या कि ज्यो व्यवहारमैं उपयुक्त है, सो विद्या इस समयमैं अँगरेजी फारसी हैं, यातैं इननैं हीं उन्नति पाई है, संस्कृतविद्याका प्रचार बहुत कम होगया, तो उन पवित्रपुरुषोंकी पूर्वोक्त इच्छाका पूर्ण होणां कठिन हो गया, अब उनकी इच्छा पूर्ण करणेंके अर्थ महाराजा खेतडी श्री १०८ अजितसिंहजी बहादुर जिनकूं बुद्धिमानोंमैं अग्रणी कहणें चाहिये, काहेतैं कि जिननैं थोडे ही समयमैं अपणीं तीक्ष्णबुद्धितैं आत्मविद्याका उपदेश ग्रहण करिकैं ज्ञान सिद्ध किया, ओर

जिनमैं श्रीकृष्णनैं जे भगवद्गीताके अठारवें अध्यायमैं क्षत्रियोंके ७ स्वाभाविक कर्म कहे हैं, वीरता १ तेज २ धैर्य ३ चतुरता ४ युद्धमैं स्थिरता ५ उदारता ६ प्रभुशक्ति ७ वे पाये जाय हैं, ओर परम दयालु हैं, उननैं विचार किया कि इस समयमैं जीवोंकूं धर्मका तथा ज्ञानका लाभ कैसैं होय, जे पण्डित हैं वे तो शास्त्रोंका मनन करिकैं अपणैं कल्याणका शोधन करि लेवैं, परन्तु, जिनका शास्त्रोंमैं परिश्रम नहीं है, ओर जिनकूं अपणी उदर पूर्त्तिके व्यवहारतैं इतनाँ अवकाश नहीं मिलता, कि पण्डितोंके समीप प्राप्त हो करिकैं सन्देह निवृत्त करैं, ओर जिनकै धर्मकी तथा ज्ञानकी लालसा है, उनका मनोरथ कैसैं सिद्ध होय ऐसैं विचार करिकैं पण्डित **गोपीनाथजी** जिनकूं जयपुरीयसंस्कृत पाठशालामैं काव्याध्यापनका अधिकार है उनकों आज्ञा दी कि श्रीभगवद्गीताकी भाषा ऐसी होणीं चाहिये कि जिसके पठनैंतैं रसिक जनोंकूं परम आनन्द होय, ओर जिननैं ज्ञान सिद्ध किया है उनकूं ज्ञानकी परीक्षा होय, ओर जिनकूं ज्ञान प्राप्तिकी इच्छा है उनकूं ज्ञान लाभ होय, ओर कर्मका तथा उपासनाका सहज रीतिसैं निर्णय हो जाय, ऐसैं आज्ञा पाय पूर्वोक्त पण्डितजीनैं **श्रीभगवद्गीताका** अनुवाद ये उपदेशामृतघटी बणाई है इसमैं गानके पदोंसैं **श्रीगीताभावार्थ** प्रस्फुट किया है, सो विवेकी पुरुष इसका विचार करिकैं अपणाँ कल्याण करैं, ओर गानरसिक पुरुष इसका गान करि श्रीकृष्णकूं प्रसन्न करि मनोरथ सिद्ध करैं.

बुधैर्मात्सर्यमुत्सार्य द्रष्टव्या मम निर्मितिः
शोधनीया प्रयत्नेन प्रेमदृष्टिपुरस्सरम् ॥ १ ॥

॥ श्रीकृष्णायनमः ॥

अथ उपदेशामृतघटीप्रारम्भः ।

॥ मङ्गलपद ॥

॥ राग तिलककामोद । ताल दीपचंदी ॥

॥ हस्ताई ॥ करो दीठि मोपैं गनराई । श्रीगीताको
र्थ बताई ॥ अन्तरा ॥ तुम हो विघनविदारन जगमैं ।
रनागतके एक सहाई ॥ एकरदन गजवदन विनायक ।
ग पूजै सिन्दूर चढाई ॥ करो० ॥ १ ॥ बुद्धि करो मेरी
िरमल यह । नन्दनँदनमैं देहु लगाई ॥ दूर करो मतिको
ँधियारो । पाखण्डिनतैं देहु हटाई ॥ करौ० ॥ २ ॥ तुम
ो विघनविदारन जगमैं । तुमसो ओर न मोइ लखाई ॥
पनों जानि मोइ गहि लीजे । संकटहर जगके सुखदाई
। करो० ॥ ३ ॥ गोपीनाथ चरनको चेरो । आय पर्‌यो तेरे
ग पाई ॥ ज्यो तजि दैहो या संकटमैं । अतिदयालु यह
िरद लजाई ॥ करो० ॥ ४ ॥

॥ पद ॥

॥ राग तिलककामोद । ताल दीपचंदी ॥

॥ हस्ताई ॥ नन्दनँदन आनन्द कन्दको । सरन गहैं
वभय न रहै है ॥ अन्तरा ॥ खलघायक जगनायक जाकूँ ।
यारीं वेद पुकारि कहै है ॥ जाको सरन गहैं सरनागत ।
रक अगनिमैं नाँहि दहै है ॥ नन्द० ॥ १ ॥ नेति नेति यों
ेद पुकारत । जाको भेद न कोय लहै है ॥ जाको चरन
रन त्यागैं नर । जगतपतित यह नाम गहै है ॥ नन्द० ॥ २ ॥
ातकवनदावानल जाको । नाम गहैं पातक न रहै है ॥
जाति पाँतिको भेद लखै नहिं । चरन सरनको विरद वहै

है ॥ नन्द० ॥ ३ ॥ नाथ दोय कर जोरि रावरी । त्रिन
करि वरदान चहै है ॥ गीताको निजअरथ वतावो । फे
फेरि मो अरजं यहै है ॥ नन्द० ॥ ४ ॥

॥ अथ श्रीगीताप्रारम्भः ॥

॥ पद ॥

॥ राग सोरठ । ताल तिताला ॥

॥ हस्ताई ॥ कुरु खेतर हाल सुनाई । नृपतिकों संज
यों समुझाई ॥ अन्तरा ॥ धर्म खेत्र कुरु खेतर माँहीं
मेरे सुत सो भाई ॥ पाण्डुतनय पाँचूं मिलिकैं पुनि । कै
वात जचाई ॥ नृपतिकों० ॥ १ ॥ कुरुपतिकी संजय सु
वाणी । वोल्यो वचन बनाई ॥ व्यूह देखिकैं पाण्डुसुतनको
दुरयोधन घवराई ॥ नृपतिकों० ॥ २ ॥ यों वोल्यो गु
पास जायकैं । देखो दीठि लगाई ॥ पाण्डुसुतनकी से
आवत । तो शिष व्यूह वनाई ॥ नृपतिकों० ॥ ३ ॥ या
वीर भीम अरजुन सम । दीरघ धनुष धराई ॥ हैं युयुध
विराट द्रुपद ये । जिनको जस जग छाई ॥ नृपतिकों० ॥४
धृष्टकेतु अरु चेकितान नृप । काशिराज वलपाई ॥ पुरुजि
कुन्तिभोज नरपुङ्गव । शैव्य भूप नृपराई ॥ नृपतिकों०॥५
युधामन्यु अभिमन्यु द्रौपदी । सुत पाँचूं हीं भाई ॥ ये स
वीर महारथ जानों । एक न एक घटाई ॥ नृपतिकों० ॥६
अव मेरी सेनाके नायक । तुमकों देहुं वताई ॥ आप कर
भीषम कृप जानों । आप तनय जुध राई ॥ नृपतिकों०
॥ ७ ॥ सौमदत्ति यों ओर वहुत मो । काज जीव विन
साई ॥ जुध आयुधमैं सकल निपुण ये । दीन्हे तुम हिं ग
णाई ॥ नृपतिकों० ॥ ८ ॥ निवल लखत है सेना मेरी

षमको वल पाई ॥ भीमसेन रक्षित सेना यह । मोकूँ प्र-
ल लखाई ॥ नृपतिकों० ॥ ९ ॥ भीषम हैं सेनापति मेरे ।
म हो सकल सहाई ॥ व्यूह वनाय यथाविधि मेरै । पीछैं
द्ध रचाई ॥ नृपतिकों० ॥ १० ॥ दुरयोधन यों कहत द्रो-
सौं । भीषम शङ्ख वजाई ॥ सिंहनाद करि दुरयोधनकै ।
ति आनन्द वढाई ॥ नृपतिकों० ॥ ११ ॥ भेरी ओर दु-
दुभी तव ही । गोमुख अरु सहनाई ॥ वजन लगे पाजे वहु
ती । तिनको निनद न माई ॥ नृपतिकों० ॥ १२ ॥ अ-
जुन कृष्ण एकरथ बैठे । जुधके साज वनाई ॥ अपनैं अ-
नै शङ्ख लेइकैं । दोनूँ दिये वजाई ॥ नृपतिकों० ॥ १३ ॥
पनैं अपनैं नृपति सकल ये । दीन्हे शङ्ख वजाई ॥ सुनि
ङ्खध्वनि पाण्डुसुतनकी । दुरयोधन घवराई ॥ नृपतिकों०
१४ ॥ लेइ धनुष अरजुन वोल्यो यों । हरिकूँ सीस नवाई ।
रो रथ दोनूं सेनामधि । देहु आप ठहराई ॥ नृपतिकों० ॥
१५ ॥ सव भूपनकों देखि लेहुँ मैं । कोन कोन ह्याँ आई ॥
संग जुद्ध करैंगे को को एक एक दरसाई ॥ नृपतिकों०
१६ ॥ ऐसैं सुनि अरजुनके रथकूं । दीन्हो कृष्ण चलाई ॥
षम द्रोण दोय सनमुख करि । दीन्हो है ठहराई ॥ नृपतिकों० ॥
१७ ॥ हरि वोले लखि सव नृपतिनकों । जुद्ध काज जे
ई ॥ को को जुद्ध करैंगे तोतैं । देख हु दीठि लगाई ॥
नृपतिकों० ॥ १८ ॥ गुरु सुत वन्धु सुहृद अरजुन लखि ।
त्त माँहि घवराई ॥ दीन होय करुणाकरि मुखकी ।
न्ही कान्ति गमाई ॥ नृपतिकों० ॥ १९ ॥ कृष्ण पास कर
रि आपकी । विनती करत सुनाई ॥ सुजन देखि जुध
ज सिधारे । मेरो मन अकुलाई ॥ नृपतिकों० ॥ २० ॥
ख सूकै अरु देह कँपत है । रोम उठत सहसाई ॥ करतैं

परत धनुष मेरी तुच । बिन हीं अगनि जलाई ॥ नृपतिकों०
॥ २१ ॥ शकुन होत विपरीत सकलही । नाहिं कल्याण ल-
खाई ॥ नाथ कौन मैं लाभ लहूँगो । सारे सुजन नसाई ।
॥ नृपतिकों० ॥ २२ ॥ विजय चहूँ न चहूँ नृपपदकूँ । सु
खकी चांह गमाई ॥ जिनके काज राजसुख लीजे वेही प्रान
तजाई ॥ नृपतिकों० ॥ २३ ॥ आचारज अरु पुत्र पितामह ।
मातुल सुसर सहाई । ज्यो मारैंगे सकल मोइ मिलि । तो
हु न शस्त्र चलाई ॥ नृपतिकों० ॥ २४ ॥ इनकूं मारे ओर
लाभ नाँहि । पातक ही दरसाई ॥ सुजन सकल वध करिकैं
कहिये । कोन भाँति सुख पाई ॥ नृपतिकों० ॥ २५ ॥ यैं
तो सारे लोभ विवश हैं । पातक नाहि लखाई ॥ कुलको
नाश दोष जानत हूँ । मो मन क्यों न हटाई ॥ नृपतिकों०
॥ २६ ॥ कुलके नाश भयें सारे कुल । धरम जाय विन
साई ॥ धरम नसें सारे ही कुलकों । अधरम लेइ दबाई ।
॥ नृपतिकों० ॥ अधरमतैं कुलकी नारी दे । अपनी कानि
गमाई ॥ कानि गयें सारे कुल माँहीं । संकरसृष्टि जनाई ।
॥ नृपतिकों० ॥ २८ ॥ जल पिण्ड न पितरनकूं देई । ज्यो सं
कर उपजाई ॥ कुलके नाशकरन हारेको । कुल सब नरक
गिराई ॥ नृपतिकों० ॥ २९ ॥ हाय हाय मैं घोर पापकूं
करन लग्यो जदुराई ॥ राजलोभ करि मेरे करतैं । सारे
सुजन नसाई ॥ नृपतिकों० ॥ ३० ॥ मैं न गहूँ आयुध कर
माँहीं । कुरुपतिसुत सो भाई ॥ मारैं मोइ सकल मिलिकैं ये
तो कल्याण लखाई ॥ नृपतिकों० ॥ ३१ ॥ यों कहि अर
जुन अपनें करतैं । शर अरु धनुष वगाई ॥ वैठि गयो अ-
पनें रथ माँहीं । शोक माँहीं अकुलाई ॥ नृपतिकों० ॥ ३२ ॥

॥ उपदेशामृतघटी अध्याय १ समाप्त ॥

॥ अध्याय २ प्रारंभ ॥

॥ पद ॥

॥ राग सोरठ ॥ ताल तिताला ॥

हस्ताई ॥ कुरु खेतर हाल सुनाई । नृपतिकों संजय यों समुझाई ॥ अन्तरा ॥ शोक विकल करुणा पूरण अति । नैनन नीर वहाई ॥ लखि अरजुनकूं वासुदेव हरि । ऐसैं वचन सुनाई ॥ नृपतिकों० ॥ १ ॥ ऐसे विकट समय माँहीं यह । मोह कहाँतैं आई ॥ उत्तम लोक गहै नहिं जाकूं। कीरति सुरग नसाई॰॥ नृपतिकों० ॥ २ ॥ तजि दुरवलपन धीरज धरिकैं । सोच तनक जिन लाई ॥ जुद्धकाज आयुध गहि लीजे । सुजस जगत दे छाई ॥ नृपतिकों० ॥ ३ ॥ अपनों धरम जानि जुध कीजे । तनक न जिय घवराई ॥ जुद्ध समान धरम भूपनको । जगमैं ओर न भाई ॥ नृपतिकों० ॥ ४ ॥ पूरण पुण्य करैं पूरव वे। ऐसो अवसर पाई ॥ विन कपाट सुरपुर दरवाजो । स्मृति ये ही दरसाई॥ नृपतिकों० ॥ ५ ॥ अपजस जुद्ध तजें जग माँहीं । अचल तिहारो छाई ॥ अपजसकै वदलै मानी जन । तन दे सहज तजाई ॥ नृपतिकों० ॥ ६ ॥ डरिकैं शस्त्र तजे अरजननैं । भूपन माँहि कहाई ॥ ज्यो ज्यो नृपति तोइ वहु मानैं । तजि हैं सकल वडाई ॥ नृपतिकों० ॥ ७ ॥ अरि तेरे सारे मिलि निन्दा । करि हैं तोइ सुनाई ॥ या सम दुःख कोन जग माँहीं । निन्दा जीय कराई ॥ नृपतिकों० ॥ ८ ॥ अरजन जोरि दोय कर वोल्यो । सुनहु आप जदुराई ॥ भीषम द्रोण जोगि पूजाके । किणँविध करहुँ लडाई ॥ नृपतिकों० ॥९॥ इनको वध न करूं भिक्षा करि । देहुँ आयु भिरभाई ॥ इनकूं मारि भोग भोगूं सो । रुधिर रहे लिपटाई ॥ नृपति-

कौं० ॥ १० ॥ ये नहिं जानूँ कवन जीति है । कवन पराजय पाई ॥ जिनकूँ मारि न जीयो चाहूँ । वे ही करत लडाई ॥ नृपतिकौं० ॥ ११ ॥ दीन होइ मैं अरज करत हूँ । धर्ममूढ मति पाई ॥ ज्यों कल्याण लखत मेरो प्रभु । कहु सो शिष्य बनाई ॥ नृपतिकौं० ॥ १२ ॥ नहिं लरिहौं कहि चुप हो बैठ्यो । लखि अरजन जदुराई ॥ मृदु मुसकाकैं कहन लगे सो । सुनिये चित्त लगाई ॥ नृपतिकौं० ॥ १३ ॥

॥ लावणी ॥

॥ राग कालिंगडा ॥

हस्ताई ॥ जब लख्यो मोह वश वासुदेव अरजनकूँ । यों करन लगे उपदेश भरम भञ्जनकूँ ॥ अन्तरा ॥ सुनि नहीं सोचके जोगि तिन्हैं तू सोचै । मति पण्डितपनकी लेइ वचन तू मोचै । मैं तू अरु ये नरनाह भये पूरव बी । अब तजि देगें यह देह रहैंगे तब बी । ज्यों देहीकै यह देहअवस्था तीनों । त्यों और देहकों गमन होउ जिन दीनों । इन विषयविषनको जोग दुःख सुख देहै । पण्डित इनकूँ चल जानि सहन करि लेहै ॥ सुखदुख जिंहि नाँहिं सतावै । वो परमानंद पद पावै । ज्यो मुक्ति चहै तू पूरी । तो विषयनतैं रहि दूरी । ज्यो नाँहिं जानि सो नाँहीं । ज्यो है सो सदा रहाँ हीं । यों पण्डित निरणय कीन्हों । दोनूँको अन्त सु चीन्हो ॥ अविनाशी वो है ज्यो कि जगतमैं व्यापी । नहिं ताकों नाशक होत कोउ पुनि तापी । यह अविनाशीकै देह कह्यो है नाशी । तातैं करि युद्ध निशंक कटैगी पाशी । ज्यो मानैं मरबो और मारबो यामैं । जिन जानहु अरजन बुद्धि तनक हू तामैं । यह जानैं साँची शुद्ध करै ज्यो मनकूँ । यों करन लगे उपदेश भरम भञ्जनकूँ० ॥ जब० । यों करन० ॥ १ ॥

यह नाँहि जनमैं नहिं मरै होय नांह होवै । अज नित्य एक-रस है पुराण यों जोवै । वो मारै है न मरावै है कोईकूं । ज्यो जांनैं नित्य अनन्तरूप देहहिंकूं । ज्यों वस्त्र पुराणों त्यागि नयो नर धारै । त्यों तन नवीनकों लेइ पुराणों टारै । ये नाँहि आयुधतैं कटै जलै न अगनतैं । ये सूकै भीजै नाहिं पवन अरु जलतैं ॥ इन्द्रिये याकूं नहि जानै । मन तन हू नाहि पिछानै । याकूं जिन जानि विकारी । तू सोच देय सब टारी । ज्यो जनम मरन हू मानैं । तो हू मन सोच न आनैं । ज्यो जनम लेइ सो मरि है । याकूं कहि को परिहरि है ॥ ज्यो आदि अन्तमैं नाँहिं मध्य सो नाँहीं । तू देखि लेइ सब जगत वस्तुके माँहीं । ज्यो या आतमकूं लखै कहै रु सुनै है । सो इचरज ज्यों सुनिकैं हू नाँहि लहै है । ज्यो मोति होइ तो सुरग माँहि गति तेरी । ज्यो जीति होइ तो भोग हु भूमि घनेरी । लरि सम करि सुख दुख दरिद ओर तू धनकूं । यों करन० ॥ जव० । यों करन० ॥२॥ तू सुख दुख सम करि धरम जानि ज्यो लरि है । तो तनक हु पातक तात तोइ नहि अरि है । ये कह्यो साङ्ख्यको ज्ञान सुनायो तोकूं । अब कर्मयोग उपदेशक जानहु मोकूं । मैं कर्मयोग ज्यो कहूँ ताहि ज्यो करि है । तो कर्मबंन्धतैं सहज तात तू टरि है । प्रारम्भनाश अरु प्रत्यवाय नहिं यामैं । तनक हु साधेतैं होय महासिधि जामैं ॥ निश्चय-मतिं एकहि जानों । निश्चय बिनं बहुविध मानों । जे केवल कर्महिं लीनाँ । वे हैं जगमैं मतिहीनाँ । वे अर्थवाद ही गावैं । ओर न यों वचन सुनावैं । कामना चित्तमैं धारैं । पंद सुरग हि एक पुकारैं ॥ वे क्रियाबहुल अरु जन्म कर्म फलदाई । उपदेश करैं गति मूढसभा वैठाई । धन भोग माँहि आसक्त होइ मति-हीनाँ । व्यवसायबुद्धि न समाधि होय फल लीनाँ । ये त्रिगुणवि-

पय हैं वेद जानि रे अरजन। तू त्रिगुण रहित हो जाहु धारि नित सत मन। निरदुंद ओर निरजोगछेम करि मनकूँ।यों करन० ॥ जब०। यों करन० ॥ ३ ॥ ज्यों है तलावमैं बहुत पारि गम्भीरा। मतलब जितनौं हीं लेत तहाँ नर नीरा। त्यों वेद अर्थ अपनों कल्यान हि जितनों। पण्डित यों विप्र विचारि लेइ ले तितनौं। है कर्म माँहि अधिकार न फलमैं तेरी। सम सिद्धि असिद्धी होय कर्म करिगेरो। है ज्ञानयोगतैं कर्मयोग ये दूरो। फलकाम त्यागि गहि ग्यानयोग हो शूरो ॥ ज्यो ग्यानयोग तू धरि है। तो पाप पुण्य नहिं अरि है। नित कर्म करै फल सागै। ये ग्यानिनको मत जागै। वे त्यागि कर्मफल ग्यानी। करि जन्मबन्धकी हानी। वे नित्य अचल पद पावैं। अपनें निजरूप समावैं ॥ जब मोहनदीकों तात बुद्धि ये तरि है। तब कहे सुनेंमैं अति विरक्तिकों धरि है। श्रुतिसैं हस्टि जब ये ठहरि जायगी बुद्धी। तब लगि है अचल समाधि धारिकैं शुद्धी। ऐसैं सुनि अरजुन हाथ जोरिकैं बोल्यो। मेरो संशय यह नाथ आप ही खोल्यो। अब अचलबुद्धिके कहो मोइ लछनकूँ। यों करन० ॥ जब०। यों करन० ॥ ॥ ४ ॥ सब काम तजै सन्तुष्ट होय आपहिमैं। दुखमैं उदवेग न करै चहै न सुखहिमैं। ज्यो राग रोष डर तजै नेह नहिं करि है। वो अचलबुद्धि जग माँहि नामकूँ धरि है। ज्यो शुभ रु अशुभमैं हँसै जरै न तनकहू। विषयनकी जिनकै इन्द्रियपर न भनक हू। ज्यो इन विषयनतैं हटै विषय हू हटि है। रस रहै विषयको लखैं तत्व वो कटि है ॥ रोक्यो मन बुधं हि लखावै। इंद्रिय झटता हि उडावै। यातैं इनकूँ नर रोकै। मनं चोरि हमारी झोकै। जे जे इन्द्रिय वशकीन्हे। वे अचलबुद्धि पंद लीन्हे। ज्यो ध्यावै विषय अखण्डा। सँग

होवै तहाँ प्रचण्डा । ये सङ्ग उपावै काम कामतैं रोषा । ये रोष करै है मोह भरमको पोषा । भ्रम भयें बुद्धिको नाश सहज हो जावै । बुद्धिनाश भयेंतैं आतम पद नाहिँ पावै । ज्यो प्रेम वैरकूँ छाडि विषय सेवै है । इन्द्रिय वश्य करि वाको मन सुख लेवै है । ये अचलबुद्धिको लछन कह्यो जाननकूँ । यौं करन० ॥ जव० । यौं करन० ॥ ९ ॥

॥ पद ॥

॥ राग तिलककामोद । ताल दीपचंदी ॥

॥ हस्ताई ॥ वासुदेव अरजन समुझाई । मानि वचन परमानंद पाई ॥ अन्तरा ॥ करमयोग बिन मति शुधि नाँहीं । होय भावना तनक न माँहीं ॥ विन भावन नाहिँ शान्ति सुहाई । शान्ति विना सुख तन हु न आई ॥वासुदे० ॥१ ॥ इन्द्रिय चलै लैर मन जावै । वायु नाव ज्यौं मति हि उडावै ॥ जिन रोके इन्द्रियगण भाई । अचलबुद्धि वे नाम कहाई ॥ वासुदेव० ॥ २ ॥ सव सोवै तँहँ मुनिजन जागै । मुनि सोवै तँहँ सब अनुरागै ॥ जाकै आतम काम समाई । वैहै शान्तिसुख लियो लुटाई ॥ वासुदेव० ॥ ३ ॥ काम त्यागि जे मुनि विचरैं हैं । उनहींके मन शान्ति धरैं हैं । ब्रह्मस्थिति ये मोह न साई । अन्तसमयमैं निजपद दाई ॥ ॥ वासुदेव० ॥ ४ ॥ नाथ कियो उपदेश अजितकूँ । मुनि उपदेश परम सुखदाई ॥ परमानँदमैं लीन होयकैं । आतम अपनों लियो लखाई ॥ वासुदेव० ॥ ५ ॥

॥ उपदेशामृतघटी अध्याय २ समाप्त ॥

॥ अध्याय ३ प्रारम्भ ॥

॥ लावणी ॥

॥ राग कालिंगडा ॥

॥ हस्ताई ॥ ज्यो चहै मुक्ति निष्काम करै कर्मनकूँ। यों कृष्ण कहै समुझाय आप अरजनकूँ ॥ अन्तरा ॥ यों सुनि अरजन अपनैं कर दोऊ जोरे। सन्देह हृदयके खोलन करत निहोरे। ज्यो ज्ञानयोगतैं कर्मयोग है छेलो। तो घोर कर्ममैं नाथ मोइ क्यों पेलो। क्यों मिले वचनतैं मेरी मति घवरावो। निश्चय करि मोकूँ मत एक हि फुरमावो। तव बोले हरि ज्यो निष्ठा दोय वताई। सन्देह न करि यों भिन्न भिन्न समुझाई ॥ ज्यो साङ्ख्यशास्त्रकों मानै। वो ज्ञानयोग चित आनै। जाकी मति कर्महिं लीनाँ। वो कर्मयोग आ-धीनाँ। नहिं मुक्ति कर्मके छोडैं। सन्यासहिमैं पुनि दोडैं न ये त्रिगुणहिं कर्म करावै। विन कर्मन कोउ लखावै ॥ ज्यो ये कर्मेन्द्रिय रोकि विषय मन ध्यावै। वो मूरखमति नर मि-थ्याचार कहावै। मनतें इन्द्रिय वश कियें कर्म ज्यो करिहै। आसक्ति त्यागि वो पद विशेषकूँ धरि है। है नहिं करनैंतैं करन कर्मको नीको। करि कर्म विना निरवाह नँ होवै जीको। करि कर्म करै सो हरिपदयुग अरपनकूँ। यों कृष्ण कहै समुझाय आप अरजनकूँ ॥ ज्यो चहै०। यों कृष्ण कहै० ॥ १ ॥ हरि निमित कर्मतैं ओर कर्मको करनों। व-न्धन है यातैं उन कर्मनतैं डरनों। विधिनैं हू पूरव यहै प्रजा उपजाई। अरु कर्म रचे पुनि ऐसैं वचन सुनाई। इन यज्ञ-नतैं तुम परम वृद्धिकूँ पैहो। अरु सकल मनोरथ मनके सिध करि लैहो। इनके करनैंतैं देव तृप्तिकूँ पैहैं। सुर तृप्त भयेंतैं सकल कामना दैहैं ॥ अपनों कल्याण विचारी। हो

आपसमैं उपकारी । तुम यज्ञशेष ज्यो खैहो । तो पापनतैं छुटि जैहो । ज्यो आतमकाम पकावै । वो नर पातक ही खावै । विन दिन दियें सुरनकों खावो । तो जगमैं चोर कहावो ॥ ये भूत अन्नतैं होंय अन्न मेघंनतैं । ये मेघ यज्ञतैं होय यज्ञ कर्मनतैं । ये कर्म वेदतैं भयें, ब्रह्मतैं वेदा । वो ब्रह्म अखण्ड अनादि जहाँ नाहिं भेदा । ये यज्ञ कियें पूजन जानों वाहीको । यह चक्र चलावै नाहिं वहै नहिं नीको । वो पापी विषयी वृथा धरै जीवनकूँ । यों कृष्ण कहै० ॥ ज्यो चहै० । यों कृष्ण कहै० ॥ २ ॥ रति तृप्ति ओर सन्तुष्टि आप ही माँहीं । जाकै हो सो नर कारज करतो नाँहीं । करनों नाहिं करनों सम है दोनूं वाकै । नहिं विषय चाह है मनमाँहीं कछु ताकै । अरजन तू ऐसो नाँहिं करम करि तातैं । आसक्ति त्यागि परपद पावैगो यातैं । जनकादिक कर्महिं करत सिद्धिकूँ पाई । लोकोपकार लखि करहु कर्म सुखदाई ॥ ज्यो शिष्ट लोक आचरते । सो इतर लोक हू करते । वे जा प्रमाणकूँ मानैं । सब ताकूँ उत्तम जानैं । मेरै कछु तिहु लोकनमैं । करतव्य नाँहिं लखि मनमैं । तो हू मैं कर्म धरूँ हूँ । उपकारक जानि करूँ हूँ ॥ ज्यो मैं न करूँ तो लोक नष्ट हो जावै । सब कर्म तजै अरु सङ्कर सृष्टि उपावै । आसक्त होय ज्यों मूरख कर्म करै है । आसक्तिरहित त्यों ज्ञानी कर्म धरै है । मति कर्मरसिककी ज्ञानी नाहिं चिगावै । वो आप कर्मकूँ करै ताहि करवावै । ज्ञानीको करनों लोक रीति साधनकूँ । यों कृष्ण कहै० ॥ ज्यो चहै० । यों कृष्ण कहै० ॥ ३ ॥ गुण करैं प्रकृतिके सकल कर्म समुदाई । मैं करता हूँ यों मूरख मति ठहराई । ज्ञानी गुणमैं गुण वरत रहे यों मानी । वो करम करत हू किई अहन्ता हानी । गुणमूढ लगे गुणकर्ममाँहिं प-

हिचानी । लखि तिनैं मन्दमति उनकी मति न चिगानी । तू आतमदृग गहि मोइं कर्म अरपन करि । फल ममता उभै निवारि ताप तजिकैं लरि ॥ सरधा करि ये मत साधैं । वे पापपटलकूं बाधैं । ज्यों या मतकूं नहिं धरिहैं । वो मूढ नरकमैं परि हैं । है अपनी प्रकृती जैसैं । ज्ञानी हू करते तैसैं । जिन राग रोष वश होवू । ये ज्ञानशत्रु हैं दोवू ॥ है मरन धर्मकै माँहि आपकै नीको । परधर्म गहैं कल्यान न होवै जीको । अरजन बोल्यो यह पाप कोन करवावै । नहिं चाहै तो हू बल सो करत लखावै । हरि बोले यह है काम रजोगुण जायो । यह तन हू धापै नाहिं जीव अरि गायो । अरजन तू याकूं छेदि कीमवन्धनकूं० । यों कृष्ण कहै० । जोचहै० यों कृष्ण कहै० ॥ ४ ॥०

॥ पद ॥

॥ राग उझाज ॥ ताल दीपचंदी ॥

हस्ताई ॥ ये अनरथ करत न टरि है । अरजन काम जीवको अरि है ॥ अन्तरा ॥ धूम अगनिकूं मल दरपनकू । रह जैसैं ढकि करिहै ॥ पेशी गरभ लिपटि रहि जैसैं । रहतो ग्यान पकरि है ॥ अरजन० ॥ १ ॥ ज्ञान ढाँकि मोहै जीवनकूं । ऐसो कारज करि है ॥ इन्द्रिय मन मति घर हैं याके । रहतो इनकूं धरि है ॥ अरजन० ॥ २ ॥ इन्द्रिय पर मन इनतैं पर है । मति यातैं उपरि है ॥ मतितैं पर निजरूप आपको । ताहि लखैं यह डरि है ॥ अरजन० ॥ ३ ॥ लखि ताकूं इन्द्रिय वश करिकैं । अपनों आप सम्हरि हैं ॥ तो नाशैगो काम सहज ही । अपनों भेद उघरि है ॥ अरजन० ॥ ४ ॥ अजित कृष्णउपदेश यहै

हिय। ज्यो अवहींतैं धरि है ॥ नाथ कहै सन्देह न जानो। परमानंद रस झरि है ॥ अरजन० ॥ ५ ॥

॥ उपदेशामृतघटी अध्याय ३ सम्प्राप्तः ॥

॥ अध्याय ४ प्रारम्भः ॥

॥ लावणी ॥

॥ राग कालिंगडा ॥

॥ हस्ताई ॥ श्रीकृष्ण हृदयके सकल भरम भेदनकूं। यौं कर्मयज्ञके भेद कहै अरजनकूं ॥ अन्तरा ॥ मैं रविकूं पूरव यह उपदेश कियो है। वैवस्वत मनुकूं रविनैं ग्यान दियो है। इक्ष्वाकु भूपकूं मनुनैं यही कह्यो है। यौं क्रमतैं नरपति ये ही ग्यान लह्यो है। अब भई कालके फेरफारतैं हरुनी। यातैं नहिं ये उपदेश लखै जग जानी। यह अति रहस्यकी जानौं वात पुराणी। तू भक्त मित्र है यातैं तोय वखानी ॥ मैं जन्म लिये वहु वारी। तैं हू तन बहुविध धारी। मैं उन जनमंकूँ जानूँ। तू नहिं जानत यौं मानूँ। अज नित्य एकरस हूँ मैं। मायातैं जन्म धरूँ मैं। जब धर्महानि हो जावै। अधरमकी वृद्धि लखावै ॥ अवतार लेय मैं उत्तम लोक निवाजूँ। देवूँ दुष्टनकूँ दण्ड करूँ सुरकाजूँ। अवतार जगतमैं जुगजुगमैं मैं धारू। अधरमकूँ छेदूँ वेदधरम परिचारूँ। ज्यो तत्वरूपतैं मोकूँ तात लखावै। वो त्यागि देह यह फेरि जन्म नहिं पावै। तू दिव्य जानि मो जन्म ओर कर्मनकूँ। यौं कर्मयज्ञके भेद कहै अरजनकूँ ॥ श्रीकृष्ण०। यौं० कर्मयज्ञके० ॥ १ ॥ ज्यो राग रोष भय दोष निवारै कोई। मो मय होकैं मेरे शरणागत होई। वो पाय ग्यान तप नर पवित्र हो जावै। अरु छेदि भरम मेरे निजरूप समावैं। ज्यो

जाविध मेरे शरण होय जग माँहीं । मैं ताविध ताकूँ गहूँ तजूँ हूँ नाँहीं । ज्यो मो पथ चालै सत्र त्यागै मो काजै । मैं तजि देवूँ तो वाकूँ कोन निवाजै ॥ झट कर्मसिद्धि मन होई । सुरयज्ञ रचावै सोई । मैं च्यारि वर्ण उपजाये । गुणकर्म भिन्न दिखलाये । मैं सब लोकनको भरता । करता हूँ तऊ अकरता । नहि कर्म मोय लिपटाँहीं । फल इच्छा मेरे नाँहीं ॥ ज्यो नर मोकूँ याविध जानत है कोई । तो कर्मवन्ध ताकै तन हू नहि होई । तेरे पूरव नृप यातैं कर्म कियो है । तैं हू करि मैंनें यह उपदेश दियो है । पण्डित हू कर्म अकर्म माहि भरमैं हैं । सो तोय बतावूँ जानि अशुभ छुटि जैहैं । है जोगि अकर्म विकर्म कर्म जाननकूँ । यों कर्मयज्ञके० ॥ श्रीकृष्ण० । यों कर्मयज्ञके० ॥ २ ॥ अकरममैं जानैं करमबुद्धिकूँ धारी । अरु करम माहि अकरम मों बुद्धि विचारी । वो बुद्धिमान है सकल लोकमैं मानी । वो योगयुक्त सब कर्म किये यों जानी । सङ्कल्प काम तजि कर्म ग्यानतैं जारै । वो पण्डित ऐसैं मेरो है निरधारै । फल नेह त्यागि नित तृप्त कर्मकों करतो । वो कर्म करत हू रहै कर्मतैं टरतो ॥ ज्यो आश तजै सब जगकी । गति रोकै ज्यो मन मगकी । ज्यो देह कर्म नहि त्यागै । तो पातक तन हु न लागै । ज्यो मिलै तहाँ संतोसी । मच्छरता दुंद न जोसी। सम सिद्धि असिद्धी होई । करत हु नर बँधत न सोई । ज्यो मुक्त सङ्ग तजि चित्त ग्यान थिर कीन्हों । हरि निमित्त कर्म करि कर्मविलय करि दीन्हों । या ब्रह्मअग्निमैं ब्रह्म हवी होमत है । हवि अरपन दोवू ब्रह्मरूप जानत है । या ब्रह्मकर्मतैं ब्रह्मरूप वो पावै । जाकूँ सब जग ये ब्रह्मरूप दरसावै । योगी कोऊ जिग करै देवपूजनकों । यों कर्मयज्ञके० ॥ श्री-

कृष्ण० । यों कर्मयज्ञके० ॥ २ ॥ है ब्रह्मअग्निमैं यज्ञ यज्ञसैं होमैं । कोई ऐसे करि गाढी निष्ठा मोमैं । संयमकूँ अग्नि बनाय ग्यान इन्द्रिय हवि । करिकैं होमैं है जगत माँहि कोई कवि । इन्द्रिय ये अग्नि बनाय विषय हवि करिकैं । गृहवासी होमत नित्य धर्मकूँ धरिकैं । ज्यो ध्याननिष्ठ मानव है जगमैं कोई । अब उनैकी निष्ठा तात बताऊँ तोई ॥ मन संयम योगअगनि धरि । अरु ग्यान दारु दीपित करि । इन्द्रिय असुके व्यापारा । होमत यों है निरधारा । है द्रव्ययंज्ञके करता । पुनि तपोयोगके धरता । अरु योगयज्ञ आचारै । पुनि पाठयज्ञ विसतारै ॥ है ज्ञानयज्ञ विसतार करनहारे यति । अति कठिन वरत धारन लागी जिनकी मति । कोई अपानमैं प्रानविलय करि देहै । कोई अपानकूँ प्रान एक करि लेहै । कोई कुम्भक करि दोनूँकी गति रोकै । ये सब हि यज्ञकूँ करैं परे नहिं धोकै । आहारनियम बहु करत करन जीतनकूँ । यों कर्मयज्ञके० ॥ श्रीकृष्ण० । यों कर्मयज्ञके० ॥ ७ ॥ ये यज्ञ करत सारे पातक संहारै । अरु यज्ञशेषकूँ खाय लहै निसतारै । ये हू सुधरै नहिं लोक यज्ञविन भाई । पर लोक कोनु विध सधै कहो समुझाई ॥ ऐसे नानाविध यज्ञ वेदमुखमैं है । ये होय कर्मतैं जानि मुक्तिपद पैहै । या द्रव्ययज्ञतैं ज्ञानयज्ञ उत्तम है । या ज्ञानयज्ञके भयैं कर्मको शम है ॥ ज्ञानिनके पद सिर धरिकैं । यां विधके प्रश्न जु करिकैं । कहु ये जग मोमैं कैसैं । अरु होय निवृत्ती जैसैं । तव वे उपदेश करैंगे । तेरे चित ग्यान धरैंगे । तव तनक न मोह रहैगो । अपनों निजरूप लहैगो ॥ निजरूप लहैं सब जग आतम दरसैगो । आतम परमातम भेद नाँहि परसैगो । ज्यों पाप समंद है घोर तहाँ परिजै है । तो ज्ञाननावमैं वैठि पार

लगिलैहै। ज्यों बधे अगनितैं घास खाख हो जाई । त्यों ज्ञान अग्नितैं करम भसम हो भाई । नहिं ग्यान बराबर है पवित्र समुझनकूँ । यों कर्म यज्ञके० ॥ श्रीकृष्ण० । यों कर्मयज्ञके० ॥ ५ ॥

॥ पद ॥

॥ राग काफी ॥ ताल दीपचंदी ॥

हस्ताई ॥ काटि ग्यान असितैं संशय तरु । करमयोगकूँ धारि सही रे ॥ सुधरम जानि युद्ध अब कीजे । अरजन मो उपदेश यही रे ॥ अन्तरा ॥ करमयोगतैं योग्य होयकैं । जिन सरधा मन माँहि गही रे ॥ समय पाय इन्द्रिय दम करिकैं । वे आतम गति सहज लही रे ॥ काटि० ॥ १ ॥ ज्ञानयोग करि शान्ति लही जिन । तिनकै सुखमय सकल मही रे ॥ सरधा त्यागि लीन संशयमैं । ताकी मति अज्ञान दही रे ॥ काटि० ॥ २ ॥ करमयोगकूँ साध्यो जानैं । फल मान्यौं हरि अरपन ही रे ॥ छेदि ग्यानतैं मनसंशयकूँ । करत करम नहिं बँधत वही रे ॥ काटि० ॥ ३ ॥ अंजित हिये उपदेश लगत ही । झट संशयकी भीति ढही रे ॥ वाणी मृदु बोले यह साँची । ज्यो अरजनकूँ आप कही रे ॥ काटि० ॥ ४ ॥

॥ उपदेशामृतवटी अध्याय ४ समाप्त ॥

॥ अध्याय ५ प्रारंभ ॥

॥ लावणी ॥

॥ राग कालिंगडा ॥

हस्ताई ॥ संन्यास कर्म परधान ग्यान साधनकूँ । यों कृष्ण कहै समुझाय आप अरजनकूँ ॥ अन्तरा ॥ अरजन

बोल्यो संन्यास कर्मको कहते । अरु कर्मयोग हू ताहि साथि पुनि गहते । कल्याणरूप ज्यो नाथ दोय मैं होई । निश्चयतैं द्यो फुरमाय कृपा करि सोई । हरि बोले ज्यी संन्यास कह्यो है तोई । पुनि कर्मयोग तू उत्तम जानहु दोई । दोनूंमैं उत्तम कर्मयोग तू मानी । विसवास हमारे वचन माहि वहु आनी ॥ ज्यो काम वैरकूं छोडै । पुनि दुंद माहि नहि दोडै । वो नर है नित संन्यासी । परमानंद पदकूं पासी । पद साङ्ख्ययोगतैं ज्योई । है कर्मयोगतैं सोई । दोनूंमैं एक हु साधै । तो दोनूंको फल लाधै ॥ विन कर्मयोग संन्यास तात नहि होई । अरु कर्मयोगतैं ताहि सिद्धि झट जोई । संन्यास सिद्धिके भयें ब्रह्मपद पावै । पदै लहें ब्रह्म परमानंद माँहि संमावै । ज्यो कर्मयोगकूं साधि शुद्ध चित कीन्हो । जीते इन्द्रिय तन ग्यान सिद्ध करि लीन्हो । वो कर्म करत हू लहैं नाहि वन्धनकूं । यों कृष्ण कहै० ॥ संन्यास० । यों कृष्ण कहै० ॥ १ ॥ ज्ञानी करत हु मैं नहि करूं यों मानी । इन्द्रिय विषयोंमैं वरत रहे पहिचानी । ज्यो करत करम संग त्यागि करत हरि अरपन । पातक लिपटै है नांहि तात ताके तन । तन मन मति इन्द्रिय लेय करम करते हैं । चित शुद्धि काज जे करम योग धरते हैं । हरि शरण कर्म फल त्यागि शान्तिकूं पावै । फललीन काम वश होय वन्धमैं आवै ॥ गहि ग्यान करम सव त्यागै । ज्यो आतमसुखमैं लागै । वो नवद्वार पुर माँहीं । कछु करै करावै नाँहीं । नहि ईश रचै कर्मनकूं । लिपटावै नहि जीवनकूं । नहि ईश कर्मफल जोरै । ये जीव सुभाव हि दोरै ॥ नहि पाप पुण्यकूं लेत ईश सवको है । अज्ञान ढाँकिकैं ज्ञान जीवकूं मोहै । जिन नाश कियो अज्ञान ग्यानकूं पाई । उन

हीँकूँ पूरणरूप ईश दरसाई । मति पाप ग्यानतैं जारि ई-शमैं धारै ।वो नित्य अचल पद जाय लहै निसतारै । तू ताहीमैं चित देई पाप छेदनकूँ । यों कृष्ण कहै० ॥ संन्यास० । यों कृष्ण कहै० ॥ २ ॥ शुभ विप्रगुणों करि युक्त विप्रमैं गोमैं । चण्डाल हस्ति अरु कुकुर इन तीनोमैं । ज्यो ब्रह्म एक ही लहै वही पण्डित है । तन रहत यहै संसार उनोंकै जित है । निरदोष ब्रह्ममैं जिन मन थिर कीन्हो है । वे ब्रह्म माहिं ही वास तात लीन्हो है । प्रिय अप्रिय माँहीं राग रोष जिहिं नाँहीं । वो ब्रह्मस्थित विद्वान गण्यों जग माँहीं ॥ वाहिरके विषयों माँहीं । जाको मन लागत नाँहीं । वो नर जा सुखकूं पावै । अंतर करि शान्ति लखावै । शुभ ब्रह्मयोग तिहिं होई । अक्षय सुख पावै सोई । ज्यो विषयनको सुख भाई । सो है जगमैं दुखदाई ॥ इन विषय सुखोंमैं रमैं नाँहि है ग्यानी । उतपत्ति नाश इन दोनूँकूं पहिचानी ज्यो या शरीरके पतनकाल पूरव नर । मुनि काम रोषको वेग रोकले सुखकर । अंतर सुख जानैं ओर रमैं अंतर ही अंतर दृग होकैं ब्रह्म लहै सुख कर ही । वो योगी मेटै ग-मन और आवनकूं । यों कृष्ण कहै० ॥ संन्यास० । यों कृष्ण कहै० ॥ ३ ॥

॥ पद ॥

॥ राग काफी । ताल दीपचंदी ॥

॥ इस्ताई ॥ भेद भरमकूं छेदितात ज्यो । सरव भूत हित माँहि रहै है ॥ कलमष पटल निवारि वहै मुनि । परमानँद पद सहज लहै है ॥ अन्तरा ॥ काम रोषकूँ त्यागि होय यति । ज्यो मन संयम आप गहै है ॥ ब्रह्म दीठि जग माँहीं होकैं । जनम मरन दुख नाँहिं सहै है ॥ भेद भरम० ॥ १ ॥

विषयनकी चिन्ता परिहरिकैं । भ्रुकुटीके मधि दीठि वहै है ॥ प्रान अपान वायु सम करिकैं । नासा मधि संचार चहै है ॥ भेद भरम० ॥ २ ॥ मन मति इन्द्रिय ये वश करिकैं । मुक्ति माँहि ज्यो प्रीति वहै है ॥ इच्छा भय अरु रोष निवारै । वाकूं जीवन मुकत कहै है. ॥ भेद भरम० ॥ ३ ॥ जिगं तप पालक सुहृद महेस्वर । जानि मोइ ज्यो प्रीति वहै है ॥ मोइ कृपातैं परम शान्ति लहि । नहिं सुख दुखके ताप दहै है ॥ भेद भरम० ॥ ४ ॥ अजितसिंह महाराज खेतडी । ज्यो परमानँद लाभ चहै हैं ॥ ज्ञान साधि निज रूप सह्मारो । नाथ कृष्ण उपदेश यहै है ॥ भेद भरम० ॥ ५ ॥

॥ उपदेशामृतघटी अध्याय ५ समाप्त ॥

॥ अध्याय ६ प्रारम्भ ॥

॥ लावणी ॥

॥ राग कालिँगडा ॥

हस्ताई ॥ संन्यास मात्रतैं ध्यान नाँहिं जाननकूं । यों योगरीति समुझात कृष्ण अरजनकूं ॥ अन्तरा ॥ ज्यो त्यागि कर्मफल कर्म करै है कोई । संन्यासी योगी जानि जगतमैं सोई । है क्रिया अग्निकूं तजैं भयें वनवासी । काषाय वस्त्रकूँ धरैं नाहि संन्यासी । संन्यास योग तू दोनूं एक हि मानी । संकल्प त्याग विन योगी हो नहिं जानी । है ज्ञानयोगको हेतु कर्मको करनों । अरु ध्यानपाकको हेतु शान्तिको धरनों ॥ नहिं विषयनके रँग लागै । नहिं कर्मनमैं अनुरागै । ज्यो संकल्प न मन लावै । वो योगारूढ कहावै । नर आपो आप उधारै । नहिं याहि नरकमैं डारै । अरि

आप आपको जानौं। अरु बन्धु आपकूँ मानौं॥ वो बन्धु आपको आप होय उपकारी। वो शत्रु आपकूँ अनरथमैं दे डारी। ज्यो जीतै आपो परम शान्तिकूँ पाई। अरु शीत उष्ण सुख दुखमैं एक लखाई। अपमान मानमैं एक बुद्धि ज्यो भाई। वाहीकूँ आतम अचल रूप दरसाई। ये योगारूढ पिछानि लेइ लच्छनकूँ। यों योग० ॥ संन्यास०। यों योग० ॥ १ ॥ ज्ञानी विज्ञानी होय तृप्तिकूँ पाई। अविकारी इन्द्रियजयी होय ज्यो भाई। ज्यो लोह उपल कंचनमैं सम मति होई। तू योगारूढ पिछान हु जगमैं सोई। नर उदासीन अरि मित्र होय सम जाकै। ज्यो बन्धु और मध्यस्थ दोय सम ताकै। है साधु नीचमैं भेद बुद्धि जिहिं नांहीं। वो उत्तम योगारूढ गण्यों जग माँहीं॥ अब योग तोइ दरसाऊँ। साधनकी रीति बताँऊँ। शुभ देश इकंत हि देखै। योगी दूजो नहिं लेखै। थिर आसन तहाँ जमावै। नीचेंकूँ डाभ बिछावै। तिहिं ऊपर चर्म बनावै। ता ऊपर वस्त्र लगावै॥ पुनि मूलाधार हि लेइ सीसलौं तनकूँ। सीधो करिकैं थित होई अचल करि मनकूँ। नासिका अग्रके माँहिं देइ दृष्टीकूँ। इन्द्रिय दम करि नहिं लखै सकल सृष्टीकूँ। धरि ब्रह्मचर्य भय त्यागि चित्त मो माँहीं। धरिकैं विषयोंमैं याहि लगावै नाँहीं। यों कह्यो तात मैं तोइ योग साधनकूँ। यों योग० ॥ संन्यास०। यों योग० ॥ २ ॥ ज्यो साधि योग ये मनकूँ अचल करै है। मो रूप होय सो उपशम परम धरै है। यह योग किये उपवास और बहु खायें। बहु सोयें अरु निद्राको नाश करायें। नहिं है यातैं जे नियत कर्म करते हैं। वे ही दुखहारी योगसिद्धि धरते हैं। जब अचल भयो मन आतम माँहिं लखावै। तब सिद्ध योग

यौं मेरो मत दरसावै ॥ है ज्यौं दीपककी लोई । निरवात गेहमैं होई । त्यौं योगीको मन जानी । ये उपमा तोइ वखानी । शुध मन जँहँ उपरम पाई । अरु आतम ही दरसाई । ज्यो सुख इन्द्रिय नहिं जानैं । मति एक जाहि पहिचानैं ॥ मन चलै जहाँतैं नाँहिं तत्त्वकों थाई । गहि परम लाभ दुखमैं हू नाँहिं चिगाई । तू दुखसंयोगवियोग योग ये जानी । मैं मित्र जानिकैं तोकूं दियो वखानी । या योग माँहिं निश्चय करि योगी लागै । झट सिद्धि नाँहिं याकी तो हू न विरागै । ये कह्यो योग मैं आतम सुख देखनकूँ । यौं योग० ॥ संन्यास० । यौं योग० ॥ ३ ॥ योगी संकल्प निवारि काम सव वाधै । मनतैं इन्द्रिय सव रोकि योग यह साधै । अव कहूँ धारणा तात तोइ समुझाई । मनकी चञ्चलता जातैं जाय नसाई । रोकै धीरज धरि सनैं सनैं या मनकूँ । होनैं दे यामैं नाँहिं विषय चिन्तनकूँ । रजको वल पाकैं इत उत मन जव दोडै । योगी याकूं तव रोकि आपमैं जोडै ॥ यह शान्त रजोगुण जाको । मन शान्ति लहै है ताको । वो ब्रह्मरूप सुख पावै । दुख लेश नाँहिं दरसावै । ज्यो याविध योग धरै है । वाके सव पाप जरै है । सुखतैं वो ब्रह्म लखावै । परमानंद माँहिं समावै ॥ ज्यो ब्रह्म दीठि जग माँहिं लहै है कोई । अपनों आतम जग माँहिं लहै है सोई । वाकूँ आतममैं सकल भूत दरसावै । हो अचलचित्त जग माँहीं ये फल पावै । ज्यो मोमैं जगकूँ लखै जगतमैं मोकूं । विज्ञान दीठि ताकी तनक न मैं रोकूँ । मैं वाकूँ देवूं तात अचल दरसनकूँ । यौं योग० ॥ संन्यास० । यौं योग० ॥ ४ ॥ ज्यो सर्व भूत मधि मोइ भजै है कोई । धरि एक वुद्धि विधि किङ्कर वो नहिं होई । अपनैं सुख

दुख ज्यों सबके सुखदुख जानैं। वो उत्तम योगी मेरो मत यों मानैं। अरजन बोल्यो यह अरज सुनों जदुराई। यह तो मोकूं अति कठिन बात फुरमाई। मन चञ्चलता तजि लय विक्षेप न जावै। तब कहे योगकी सिद्धि मोइ दरसावै॥ मन रोकें हू नहिं रुकतो। ये विषयनहींमैं झुकतो। पारदकूं गहि ले कोई। मनकूं वस करले सोई। रोकूं विषयनतैं जिनतैं। यह मुडै नाँहि है तिनतैं। रोकै तातैं न हटावै। ये प्रबल मोइ दरसावै॥ हरि बोले अरजन साँच कही तैं भाई। ये महाप्रबल है सहज नाँहि वश आई। अभ्यास और वैराग जगतमैं दोई। याकी चञ्चलता हरै ओर नाँहि कोई। ज्यो ये न रुकै तो योगसिद्धि नहिं होई। याके रुकनें-तैं योग सिद्धि झट जोई। तू याहि रोकि अरु कर हु योग साधनकूं। यों योग० ॥ संन्यास०। यों योग० ॥ ५ ॥ अरजन बोल्यो फल किये कर्मको त्यागै। अरु योगसिद्धि जाकै पूरण नाँहि जागै। ये कर्म भयेंतें विफल सुरग गति नाँहीं। अरु ग्यानसिद्धि विन नाँहि मुक्तिपद पाँहीं। दोनूंको फल नहिं भयें कवन गति जाई। यह संशय मेरे मनको देहु मिटाई। या संशयको काटनें हारो जग माँहीं। प्रभु आप विना मोकूं दीसत है नाँहीं॥ तव बोले यों जदुराई। अरजनकूं वचन सुनाई। जे नीके कर्म करैं हैं। वे दुरगतिमैं न परैं हैं। वे दोनूं लोक सुधारैं। अरु पातक सकल निवारैं। वे नीचे नाँहि रहैं हैं। अति उत्तम लोक लहैं हैं॥ वहु काल तहाँ सुख भोगि वहाँतैं आवैं। वे अतिपुनीत संपन्न जन्म घर पावैं। अथवा वे ज्ञानी योगिनके कुल माँहीं। धारैं हैं जन्म परन्तु सहज ये नाँहीं। वे पूरवकी स्मृति पाइ लगैं वाहीमैं। वे योग सि-

द्धिकूँ लैंहैं जन्म याहीमें । वे योगसिद्धिके तजै न तात जतनकूँ । यों योग० ॥ संन्यास० । यों योग० ॥ ६ ॥

॥ पद ॥

॥ राग धुनितिलँग ॥ ताल तेवरा ॥

॥ हस्ताई ॥ विधिकिङ्कर नहिं होई योगी विधिकिङ्कर नहिं होई है ॥ अन्तरा ॥ पहिलैंको अभ्यास पाइकैं । लगत योगमैं सोई है ॥ जान्यो चाहै याहि योगकूँ । सो उत्तम नर जोई है ॥ विधि० ॥ १ ॥ जतन करत है योग माँहिं ज्यो । पाप देइ सब धोई है ॥ बहुत जन्ममैं योगसिद्ध व्है । लहै परम गति वोई है ॥ विधि० ॥ २ ॥ ज्ञानिनतैं कर्मिनतैं योगी । तप कर–तातैं सोई है ॥ उत्तम यातैं योगसिद्ध व्है । लहै परम गति तोई है ॥ विधि० ॥ ३ ॥ योग करैत मो भक्ति धारिकैं । इन योगिनमैं ज्योई है । वाकूँ उत्तम योगी जान हु । ता सम ओर न कोई है ॥ विधि० ॥ ४ ॥ अजित कृष्ण उपदेश यहै सुनि । झटक योग सिद्धिं जोई है ॥ मृदु मुसकाकैं बोले जगमैं मूरख बात विगोई है ॥ विधि० ॥ ५ ॥

॥ उपदेशामृतघटी अध्याय ६ समाप्त ॥

॥ इति श्रीजयपुरीय सँस्कृतपाठशालाध्यापकश्रीदधीचिवंशोद्भवपण्डितगोपीनाथविरचितायाम् उपदेशामृतघट्यां कर्मविषयः समाप्तः ॥

॥ अथ उपासनाविषयः ॥

॥ अध्याय ७ प्रारंभ ॥

॥ लावणी ॥

॥ राग धुनिदेश । ताल कवाली ॥

॥ हरताई ॥ कृष्ण अरजनकूँ समुझाई । रूप निज अपनों बतलाई ॥ अन्तरा ॥ योग करि योमैं चित धारै । आँसरो मेरो नहि टारै ॥ जानि है मोकूँ वो जैसें । बतावूँ अरजन मैं तैसें ॥ ज्ञान ओर विज्ञान ये । कहि हों तोइ सुनाय ॥ जाकूँ जानि जाननैं लायक । ओर न तोइ लखाय॥ ओर कछु शेष न रह जाई ॥ कृष्ण० ॥ १ ॥ हजारन लोकनकै माँहीं । ज्ञानके जतन कोय पाँहीं । जतन करते लाखन माँहीं । मूढ मोकूँ भजते नाँहीं ॥ भूमि वायु जल अग्नि है । नभ मन बुद्धी जानि ॥ अहङ्कार यों आठ भाँतिकी । अपरा प्रकृति पिछानि ॥ परा आगैं यों दरसाई ॥ कृष्ण० ॥२॥ जीव ये परा प्रकृति जानों । जगत ये धारत यों मानों। हेतु ये भूतनकीं जानों । मोइ कारण लय पहिचानों ॥ अरजन उत्तम मोयतैं । ओर कछू है नाँहि । सब पोये मो माहीं जैसें। मणिगण डोरे माँहि ॥ जानि व्यापक मोकूँ भाई ॥ कृष्ण० ॥ ३ ॥ जानिलै मोकूँ रस जलमैं । ओर सब पुरुषोंमैं बलमैं । वेदमैं प्रणव मोइ जानों । प्रभा रवि शशिमैं पहिचानों॥ शब्द गगनमैं वह्निमैं । तेज गन्ध भू मानि ॥ सब पुरुषोंमैं उद्यम मैं हूँ । जीवन जगको जानि ॥ तपिन-मैं तप लै परिचाई ॥ कृष्ण० ॥४॥ बुद्धिबुधिमाननमैं जानों । तेज तेजस्विनमैं मानों । सनातन बीज मोइ जानों । धर्म जुत काम मोइ मानों ॥ सात्विक राजस भाव अरु । तामस मोतैं

जानि ॥ ये मो वश मैं इनकै वश नाँ। ऐसैं लै पहिचानि ॥
त्रिगुण हीं सब जग उपजाई ॥ कृष्ण० ॥ ५ ॥ मोह का-
मादिक उपजावै। मोइ यातैं जग नहिं पावै। इनूँतैं पर
मोकूँ मानों। विकार न मेरेमैं जानों ॥ त्रिगुणमयी मेरी
यहै। माया दुस्तर जानि ॥ ज्यो मेरे शरणागत होई। सो
तरि हैं यों मानि ॥ ओर याकूँ नहिं तर जाई ॥ कृष्ण०
॥ ६ ॥ ज्ञान जिनको माया छावै। भाव असुरनको वे पावै।
नीच पापी वे जग माँहीं। मूढ मोकूँ भजते नाँहीं ॥ पुण्य-
वान मोकूँ भजैं। च्यारि पुरुष यों मांनि ॥ रोगी जिज्ञासू
धनकामी। चोथो ग्यानी जानि ॥ समझि ग्यानीकी अधि-
काई ॥ कृष्ण० ॥ ७ ॥ देह अभिमानि न ग्यानी है। भक्ति
नीकी करि जानी है। पियारे आपसमैं दोवू। तीन हू उ-
त्तम करि जोवू ॥ ज्ञानी मेरो आतमा। मोकूँ हीं गति मानि ॥
वहुत जन्मके अन्त माहिं वो। मोकूँ ले पहिचानि ॥ भक्ति
वाकै ही सरसाई ॥ कृष्ण० ॥ ८ ॥ कामहतग्यान जीव
जेई। ओर सुर भजते हैं वेई। नियम नानाविधके सेई।
प्रकृति पूरवकी वश तेई ॥ ज्यो ज्यो जैसी देवता। पूज्यो
चाहै कोय ॥ अचल ताहिमैं ताकी सरधा। करदेवूँ यों
जोय ॥ वहै वाहीमैं रमजाई ॥ कृष्ण० ॥ ९ ॥ धारि सरधा
वाकूँ भजते। पाइ फल वाहीमैं छजते। वहै फल मोतैं हीं
पावै। भोगिकैं वाकूँ बिनसावै ॥ देव भजै सो देवके। लोक
माँहि नर जाय ॥ मेरे भक्त लहैं हैं मोकूँ। फेर न जगमैं आय ॥
नित्य आनंद पद वे पाई ॥ कृष्ण० ॥ १० ॥ रूप पर मेरो
नाहिं जानैं। मन्दमति मोकूँ नर मानैं। रूप मो दीसत है
नाँहीं। नाश कवहू वो नहिं पाँहीं ॥ मेरी माया मूढकी।
मति ढकि राखी जानि ॥ यातैं हीं अज नित्य रूपकी।

वाकूँ नहिं पहिचानि ॥ वहै मायामैं भरमाई ॥ कृष्ण०॥११॥ भूत अरु वर्त्तमान जानूँ । भविष्यत मैं हीं पहिचानूं । मोइ कोई नाँहीं पवै । दुंद मोहहिंमैं लिपटावै॥ जिनके सारे पापको । अन्त भयो जग माँहिं ॥ दुंद मोहकूँ तजिकैं वे ही । गाढी भक्ति गहाँहिं ॥ भजन करि मेरो पद पाई ॥ कृष्ण० ॥ १२ ॥ अमरपदको जाकै हेरो । आँसरो वो लेवै मेरो । जतनतैं ब्रह्महिं पहिचानैं । कर्म अध्यातम वो जानैं ॥ जानि लेइ अधिभूतकों । अधियज्ञहि ले जानि ॥ अन्तकालमैं योग न विगरै । मोकूँ ले पहिचानि ॥ भक्तियुत योग साधि भाई ॥ कृष्ण० ॥ १३ ॥

॥ उपदेशामृतघटी अध्याय ७ समाप्त ॥

॥ दोहा ॥

॥ कृष्णभक्तितैं सहज ही । ब्रह्मग्यानको लाभ ॥ सप्तममैं अैसैं कही । अरजन अरविंदनाभ ॥ १ ॥

॥ अध्याय ८ प्रारम्भ ॥

॥ लावणी ॥

॥ राग धुनिदेस । ताल कवाली ॥

हस्ताई ॥ योगतैं मुक्ति लेइ पाई । कृष्ण यों मुखतैं फुरमाई ॥ अन्तरा ॥ ब्रह्म १ अध्यातम २ ये दोई । कर्म ३ अधिभूत ४ हि जे होई । मोइ अधिदैव ५ हि दरसावो । ओर अधियज्ञ ६ हि वतलावो । अन्तकालमैं आपको । किहिं विधि ७ होवै ग्यान । यों सुनि अरजनसैं बोले हरि। ताको करूँ वखान ॥ सुनों उत्तम नर चित लाई कृष्ण यों० ब्रह्म ॥ १ ॥ ब्रह्म है तात नाम वाको । नाश कवहू नहिं है

जाको। ताहिको जीवरूप होनौं । नांम अध्यातम करि जोनौं । उतपति वृद्धी ज्यो करै । यज्ञ कर्म वो मानि ॥ जाको नाश नियत हो जाई । अधिभूतहि सो जानि । पुरुष अधिदैवत है भाई ॥ कृष्ण यों० ॥ २ ॥ तात अधियज्ञ मोइ जानौं देहके माँहि मोइ मानौं । अन्तमैं सुमरन मो लागै। कलेवर अपनों ज्यो त्यागै ॥ वो मेरो निजरूप है । यामैं नहिं सन्देह । ज्यो जाकूं सुमरत तन त्यागै । सो तन लेवै वेह ॥ सुमरि मी मोकूं हीं पाई ॥ कृष्ण यों० ॥ ३ ॥ मोइ तू सुमरि सर्व कालै । युद्ध करि भरम न मन डालै । बुद्धि मन अरपन करि मोमैं । भेद नहिं रहि है मो तोमैं ॥ योग ओर अभ्यासतैं । मन थिर करिले ज्योइ ॥ दिव्य पुरुषकूं सुमरन करिकैं । पावै जगमैं सोइ ॥ ओर नर दूजो नहिं पाई ॥ कृष्ण यों० ॥ ४ ॥ नियन्ता कवि पुराण ज्योई । अणूतैं हू ज्यो अणु होई । आपकूं आपहि परकाशै । सकलकूं पोषै नहि नाशै ॥ तमतैं पर वाकूं भजै । अन्तकालमैं ज्योइ ॥ प्राण योगतैं भ्रूमधि देकैं । लहै परम गति सोइ ॥ भक्ति करि हर मन चपलाई ॥ कृष्ण यों० ॥ ५ ॥ वेद जाकूं अक्षर कहतो । विरागी जाकूं हीं गहतो । लहै ज्यो ब्रह्मचर्य पाई । वहै पद तोकूं दरसाई ॥ इन्द्रिय ये सब रोकिकैं । मन रोकै हिय माँहि ॥ प्राण आपके सिरमैं धारै । नीकैं योग धराँहि ॥ प्रणवकूं मुखतैं उचराई ॥ कृष्ण यों० ॥ ६ ॥ प्रणव जप मुखतैं ज्यो करतो । ध्यान मेरो हियमैं धरतो । प्राण तजि देवै ज्यो भाई । परम गति वाकी हो जाई ॥ मोइ त्यागि जे ओरकूं । योगी भजते नाँहि ॥ उनकूं मैं सहजहि मिलजावूं । अपनैं हिरदे माँहिं ॥ फेरि माके गर्भ न जाई ॥ कृष्ण यों० ॥ ७ ॥ कर्म करि ब्रह्मलोक

पावैं । गर्भ माताकें वे आवैं । योग करि मोकूं ज्यो पावै । मातके गर्भ न वो जावै ॥ युग हजारको होत है । ब्रह्माको दिन एक ॥ एती राति घोस प्रकृतींतैं । उपजैं वस्तु अनेक ॥ रैन प्रकृती लय हो जाई ॥ कृष्ण यों० ॥ ८ ॥ प्रकृतितैं न्यारो ज्यो कोई । सनातन पुरुष तात वोई । नसै जब भूत जगत सारो । नसै नहिं वो यों निरधारो ॥ इन्द्रिय जाकूं नाँ लखै । अक्षर जाको नाम ॥ जाकों पाइ न पीछो आवै । वो मेरो निजधाम ॥ भक्तितैं वाकी सुलभाई ॥ कृष्ण यों०॥९॥ न आणैं आणैंके ज्योई । काल दो बतलावूं तोई । ज्योति दिन शुक्ल पक्ष ज्योई । मास षट उत्तरायण होई ॥ इनकी जे हैं देवता । उनके मारग जाय ॥ ब्रह्मलीन योगी हो जावै । फेर न जगमैं आय । नित्य पद वो योगी पाई ॥ कृष्ण यों० ॥ १० ॥ धूम अरु राति कृष्णपख लै । मास षट दछनायन लखलै ॥ देवता इनकी जे कोई । लगै मारग तिनकै ज्योई ॥ वो योगी सुरगहि लहै । सुरगभोगकूं भोगि॥ पुण्य भोगके अन्त माँहिं वो । होय जनमकै जोगि । जगतमैं पीछो पलटाई ॥ कृष्ण यों० ॥ ११ ॥ शुक्ल अरु कृष्ण नाम इनके । ज्ञान इनकोजिन योगिनके । वहै योगी न मोह पाई । योगयुत हो अरजन भाई ॥ वेद यज्ञ तप दानतैं । ज्यो फल होवै तात ॥ योगी याकूं जानि याहितैं । उत्तम फलकूं पात ॥ परमपद सहज हि ले पाई ॥ कृष्ण यों०॥१२॥

॥ उपदेशामृतघटी अध्याय ८ समाप्त ॥

॥ दोहा ॥

॥ अष्टममैं हरि योगतैं । दिई मुक्ति बतलाय ॥ अरजनके सब प्रश्नके । उत्तर दिये सुनाय ॥ १ ॥

॥ अध्याय ९ प्रारम्भ ॥

॥ लावणी ॥

॥ राग धुनिदेस । ताल कवाली ॥

॥ हस्ताई ॥ कृपा करि हरिनैं फुरमाई । भक्तिकी महिमा दरसाई ॥ अन्तरा ॥ उपासनसहित ग्यान ज्योई । कहूँ अति गुप्त तात तोई । अशुभ जानैं जिहिं छुटि जाई । राजविद्या ज्यो कहलाई ॥ फल जाको प्रत्यक्ष है । अति पवित्र है ज्योइ ॥ जातैं धर्म न तन हू विगरै । सुखतैं करनौं होइ । सुनौं धरि सरधा दिढताई ॥ कृपा करि० ॥ १ ॥ धर्म यौं जानि न ज्यो लागै । याहिमैं सरधा ज्यो त्यागै । वह नर मोकूँ नहिं पाई । मोति अरु जनमहिं भरमाई ॥ जा मेरे निजरूपकूँ । इन्द्रिय सक न पिछानि ॥ तातैं मैं व्यापक जगमाँहीं । सव जग मोमैं जानि ॥ रहूँ मैं सवतैं अलगाई ॥ कृपा करि० ॥ २ ॥ जगतपोषूँ अरु उपजावूँ । जगतमैं थिति नाँहीं पावूँ । गगनमैं है वायू जैसैं । जगत मोमैं जानौं तैसैं ॥ प्रलयकालमैं भूत ये । प्रकृतिलीन हो जाय । कलप आदि प्रकृतीतैं उनकूँ । मैं देवूँ उपजाय ॥ योगमायाकी चतुराई ॥ कृपा करि० ॥ ३ ॥ प्रकृतिकूँ ज वमैं ले लेवूँ । करमवश तव जग रचि देवूँ । अलग सो उनमैं दरसावूँ । कर्मबन्धनमैं नहिं आवूँ ॥ प्रकृती मोइ निमित्त करि । ये सव जग रचि देइ ॥ हेतु यही है यातैं मोकूँ । कारण करि गहि लेइ । जगत याहीतैं उपजाई ॥ कृपा करि० ॥ ४ ॥ मूढ मोकूँ नर मानैं है । अवज्ञा मेरी ठानैं है । ईश ज्यो भूतनको होई। रूप वो जानत नाँ मोई ॥ प्रकृति असुरकी वो धरै । मोहं विवश हो जाय ॥ ज्ञानकरम निपफल व्है वाकै । आशा सिद्धि न पाय ॥ पापहीमैं वो रचि जाई ॥ कृपा करि० ॥५॥

प्रकृति जाकी दैवी होई। जगतमैं उत्तम नर वोई। हेतु मोकूं जगको जानैं। रूप अव्यय मो पहिचानैं॥ जतन करै मो गुण कहै। विनति करै दिढ होइ। सावधान हो भक्ति करै है। भक्त कहावै सोइ॥ मुक्तिभागी वो है भाई॥ कृपा करि०॥ ६॥ ज्ञानजिग कोई करते हैं। उपासन मेरो धरते हैं। एक करि कोई मो जानैं॥ जुदो करि कोई मो मानैं॥ स्वधायज्ञ ओषधि हवी। अग्नि होम अरु मन्त्र॥ मैं ही जगको माताधाता। तीन वेद अरु यन्त्र॥ तात मोमैं ही प्रभुताई॥ कृपा करि०॥ ७॥ सुहृद गति भरता मैं शरणों। वास साछी मोकूं वरणों। प्रभवलय थान मोइ जानों वीज अव्यय मो पहिचानों॥ मैं वरषूं मैंहीं तपूं। गहूं तजूं मैं तात॥ अमृत मृत्यु सत असत लखै सो। मेरो रूप लखात॥ जगतमोमैं ही निवसाई॥ कृपा करि०॥८॥ यज्ञ करते वैदिक जगमैं। चाह रखतेहैं सुरमगमैं। सोमपी पातक सव धोवैं। पुण्य गहि इन्द्रभवन जोवैं। दिव्य भोग वहु भोगिकैं। छीन पुण्य हो जाय॥ स्वर्गलोकतैं परिकैं पीछे। मर्त्यलोकमैं आय॥ यहै वैदिकगति वतलाई॥ कृपा करि०॥ ९॥ होयकैं ज्यो अनन्य कोई। उपासन करते हैं मोई। उनूंके योग छेम दोई। करूं हूं मैं ओर न कोई॥ सुर पूजै ज्यो ओर दह। मोकूं पूजै जानि॥ विधिपूरव वे पूजत नाँहीं। यातैं मुक्ति न मानि॥ जनममरनहिंमैं भरमाई॥ कृपा करि०॥ १०॥ देवताको तन मैं लेवूं। गहूं पूजा अरु फल देवूं। तत्त्वतैं मोकूं नहि जानै। पतन याहींतैं नर आनैं॥ देव पितर भूतहि भजै। उनके लोकूं जाय॥ भक्ति धारि ज्यो पूजै मोकूं। वो नर मोकूं पाय॥ फेरि वो जन्म नाँहि पाई॥ कृपा करि०॥ ११॥ पत्र फल पुष्प तोय जेई। भक्त मो अरपन करि देई। भक्ति

नीकी उनकी जानी । करूँ भोज, नमैं वहु मानी । होम दान तप ज्यो करै । ओर देह व्यवहार ॥ सो सव मो अरपन करि केई । तू लहि है निसतार ॥ अशुभ शुभ तोइ न लिपटाई ॥ कृपा करि० ॥ १२ ॥ करम मो अरपन करिदैहै । वन्ध मिटि मोकूँ तू पैहै । जानि तू सव जगमैं मोई । हितू वैरी नहिं मो कोई ॥ मोइ भजैं जे भक्तितैं । उनकूँ मोमैं जानि ॥ मैं उनमैं वो दुराचार हो । तो हू उत्तम मानि ॥ वहै झट धरमी हो जाई ॥ कृपा करि० ॥ १३ ॥ प्रतिज्ञा सभा माँहि करि तू । न शङ्का चित माँहीं धरि तू । कृष्णको भक्त न विनसाई । वचन यौं मुखतैं उचराई ॥ स्त्री अन्त्यज विश शूद्र हू । मो रत पर पद पात ॥ क्षत्र पवित्र विप्र पर पद पै । तो इचरज को तात ॥ भक्ति मेरीमैं रचि जाई ॥ कृपा करि० ॥ १४ ॥ अनित ये सारो जग जानौं । न सुख तन हू यामैं मानौं । भक्ति करि मोकूँ पहिचानौं । मिटै ज्यौं जानौं अरु आनौं ॥ नति करि मोकूँ यज्ञ करि । तू मेरेही काज ॥ शरण आँसरो मोकूँ मानी । होउ भक्त सिरताज ॥ चित्त मोमैं धरि मो पाई ॥ कृपा करि० ॥ १५ ॥

॥ उपदेशामृतवटी अध्याय ९ समाप्त ॥

॥ दोहा ॥

॥ निज ईश्वरता भक्तिको । महिमा अतुल अपार ॥ नवम माँहि हरिनैं कह्यो । अरजनकूँ निरधार ॥ १ ॥

॥ अध्याय १० प्रारम्भ ॥

॥ लावणी ॥

॥ राग धुनिदेस ॥ ताल कवाली ॥

हस्ताई ॥ कृष्ण करुणा चितमैं लाई । विभूती अ

पनी समुझाई ॥ अन्तरा ॥ फेरि उपदेश सुनावूँ हूँ । तात तात तोकूँ समुझाँवूँ हूँ । पियारो तू है अति मोई । कहूँ हित याहीतैं तोई ॥ सुरगण ऋषि जानैं नहीं । मो तन किहि विधि होय ॥ सबको आदि जानि तू मोकूँ । ये ही कारण जोय ॥ बतावूँ मेरी प्रभुताई ॥ कृष्ण करुणा० ॥ १ ॥ अनादी अज मोकूँ जानै । महेसुर लोकनको मानै । बुद्धिमैं है विवेक वाकै । पाप तनक न रहि है ताकै ॥ ज्ञानबुद्धि शम दम छमा । असम्मोह भय तुष्टि ॥ भाव अभाव अभय जस अपजस । सत्य दुःख सुख पुष्टि ॥ दान तप मोतैं उपजाई ॥ कृष्ण करुणा० ॥ २ ॥ महर्षी सात च्यारि जेई । मनू चोदह तू गणि लेई । मानसी सृष्टि यहै जानी । प्रजा उनतैं उपजी मानी ॥ योगविभूती तत्वतैं । ये मेरी पहिचानि ॥ अचल योगतैं युक्त होय है । तनक न संशय आनि ॥ मोइ सहज हि ले परिचाई ॥ कृष्ण करुणा० ॥ ३ ॥ मोइ सबको कारण जानैं । प्रवृत्ती मोतैं हीं मानैं । मोइ पण्डित यों भजते हैं । भाव रँग माँहीं रजते हैं ॥ इन्द्रिय असु मोमैं धरैं । करैं परस्पर बोध ॥ नाम गहैं सन्तोष लहैं पुनि । रमैं न राखैं रोध ॥ ज्ञान उनकै यों उपजाई ॥ कृष्ण करुणा० ॥ ४ ॥ लग्यो जिनको चितमो माँहीं । प्रीति जिनकी हटती नाँहीं । ज्ञान उनकै उपजावूँ हूँ । भक्त मो मैं हो जावूँ हूँ ॥ करुणा करि उन ऊपरैं । करूं ग्यानपरकाश ॥ हिये माँहि अज्ञान अँधेरो । उनकैं कर यों नाश ॥ सकल संशय यों विनसाई ॥ कृष्ण करुणा० ॥ ५ ॥

॥ पद ॥

॥ राग उझाज । ताल दीपचंदी ॥

हस्ताई ॥ अरजन यह सीस नवाई । कृष्णकूँ अरजी

करत सुनाई ॥ अन्तरा ॥ परब्रह्म परधाम आप हो । परमपवित्र कहाई ॥ दिव्यपुरुष अज देव एकरस । जिंहि विभुता श्रुति गाई ॥ कृष्णकूं० ॥ १ ॥ व्यास असित नारद देवलऋषि । जैसैं मोइ वताई ॥ तैसैं श्रीमुखतैं फुरमाकैं । दीन्हो भरम मिटाई ॥ कृष्णकूं० ॥ २ ॥ आप कही सव साँची मानूँ । जैसी विधि फुरमाई ॥ तो निजरूप देव दानव नाँहिं । जानत यौं दरसाई ॥ कृष्णकूं० ॥ ३ ॥ अपनों रूप आपही जानों । पुरुषोतम जदुराई ॥ देवदेव जगपति भूतेसुर । तुमहीं जग उपजाई ॥ कृष्णकूं० ॥ ४ ॥ जिन विभूतितैं सकल जगतमैं । व्यापकता तुम पाई ॥ सव जगमैं तो ध्यान धरनकूं । मोकूं देहु वताई ॥ कृष्णकूं० ॥ ५ ॥ कोन पदारथ माँहि कोन विधि । तेरो ध्यान धराई ॥ जाविधितैं सारे जग माँहीं । तू ही एक लखाई ॥ कृष्णकूं० ॥ ६ ॥ तो ईसुरपन ओर विभूती । फेरूं द्यो फुरमाई ॥ वचन अमृत पीतैं मेरो मन । तनक न तृप्ति गहाई ॥ कृष्णकूं० ॥ ७ ॥

॥ लावणी ॥

॥ राग धुनिदेस ॥ ताल कवाली ॥

हस्ताई ॥ कृष्ण अरजनकूं समुझावै । विभूती अपनी वतलावै ॥ अन्तरा ॥ अन्तमो नाँहि विभूतिनको । करूं वरणन किंहि विधि इनको । मुख्य उनमैंतैं कहतो हूं ॥ तात विसतार न गहतो हूं ॥ मैं सव जगको आतमाँ । सकल भूत गत मानि ॥ आदि अन्त दोनूं मैं हीं हूं । मध्य मोइ पहिचानि ॥ पार मेरो कोइ न पावै ॥ कृष्ण० ॥१॥ अदिति सुत वारहमैं भाई । मोइ वामनल्यो परिचाई । प्रकाशन माँहीं रवि जानों । मरीची मरुतनमैं मानों ॥ नक्षत्रनमैं मैं शशी । वेदनमैं मैं साम ॥

देवन माँहि इन्द्र मैं हीं हूँ । इंद्रिनमैं मन नाम । ज्ञान भूतनमैं दरसावै ॥ कृष्ण० ॥ २ ॥ रुद्रगण शङ्कर पहिचानों । यक्ष-गणमैं धनपति मानों । वसुन माँहीं पावक तन हूँ । गिरि-नमैं मेरू सुवरन हूँ ॥ सकल पुरोहित माँहि तू । जानि बृ-हस्पति तात ॥ जानि षडानन सेनानिनमैं । सरवर सागर गात ॥ महर्षिनमैं भृगु दृग आवै ॥ कृष्ण० ॥ ३ ॥ यज्ञमधि जपयज्ञ हि लहिये । हिमालय थावर मधि गहिये । तरुनमैं पीपल मो लेखो । देवऋषि मधि नारद देखो ॥ गन्धर्वनमैं चित्ररथ । कपिल सिद्ध मधि जानि ॥ उच्चैःश्रव अश्वनके माहीं । गज ऐरावत मानि ॥ नरनमैं नरपति तन पावै ॥ कृष्ण० ॥ ४ ॥ वज्र हूँ आयुधगण माँहीं । कामधुक धेनु-नमैं पाँहीं । काम सन्तान हेतु जानी । वासुकी सरपनमैं मानी । नागन माँहि अनन्त हूँ । जलचर वरुणहिं देखि ॥ पितरन माँहि अर्यमा मैं हूँ । यम नियमन कर लेखि ॥ दि-तिज पहलाद मोय गावै ॥ कृष्ण० ॥ ५ ॥ काल हूँ गणन करनहारो । मृगनमैं मृगपति निरधारो । गरुड पक्षिनमैं दरसावूँ । वेगयुत माँहि वायु पावूँ ॥ मकर झषनमैं जान्हवी । नदिन माँहि पहिचान ॥ आदिअन्त मधि सब जगको मैं । विद्या आतमग्यान ॥ वादवादिनमैं पिछणावै ॥ कृष्ण० ॥ ६ ॥ वर्णगणमैं अकार लेखी । समासनमैं द्वंद हि देखी। काल अक्षय मैं हूँ धाता । चतुर्मुख कर्मन फलदाता ॥ मृत्यु सर्व-हर होंयँगे । उदभव उनको जानि ॥ श्री वाणी कीरति धृति मेधा । स्मृति अरु छमा पिछानि ॥ साम मधि बृहत साम गावै ॥ कृष्ण० ॥ ७ ॥ छन्द मधि गायत्री देखो । माँगसिर मासनमैं लेखो। ऋतुन माँहीं वसन्त पाई। छलिनमैं द्यूत हि प-रिचाई ॥ तेजस्विनमैं तेज हूँ। जय हूँ अरु उद्योग ॥ सत्त्ववानमैं

सत्त्व यदुनमैं। कृष्ण लखै ऋषि लोग ॥ पाण्डुसुत तू मैं दरसावै ॥ कृष्ण० ८ ॥ यास तू मुनिंगणमैं गहिलै। कविनमैं शुक्र मोइ लहिलै। दण्ड हो दम मैं करतो हूं । नीति हो जयमैं धरतो हूं ॥ गुप्तनमैं मैं मौन हूं। ज्ञानिनमैं मैं ज्ञान ॥ मैं हीं वीज सकल भूतनको । मो विन भूतन आन ॥ विभूतिनको अन्त न आवै ॥ कृष्ण० ॥ ९ ॥ कह्यो संक्षेप विभूतिनको । नहीं विस्तार अन्त इनको । विभूती सत्त्ववान ज्योई । वलादिक युत ज्यो अति होई । सो सब मेरे तेजतैं । कहूं कहा वहु वात ॥ एक अंशमैं मेरै कलपित । सारो जगत लखात ॥ दीठिमैं ज्यो तेरै आवै ॥ कृष्ण० ॥ १० ॥

॥ उपदेशामृतघटी अध्याय १० समाप्त ॥

॥ दोहा ॥

विषयनमैं मन दोरतैं। तजै न हरिकी दृष्टि ॥ दशम माँहि यातैं कही । कृष्ण विभूती सृष्टि ॥ १ ॥

॥ अध्याय ११ प्रारम्भ ॥

॥ छन्द ॥

॥ राग विहाग॥ ताल तेवरा ॥

कीन्ही कृपा जदुराइ मो उपदेश फुरमायो । आतम अनातम ग्यान कहिकैं मोह विनसायो ॥ विसतार करि उतपत्ति लय नीकैं वताये हैं । सन्देह सारे चित्तके मेरे मिटाये हैं ॥ १ ॥ जैसो महातम रूप निज मोकूं वतायों है । उपदेशमैं प्रभु रावरे संसै न आयो है ॥ अव विश्वरूप दिखाउ मोकूं चाह मन मेरे । ज्यो देखनेंके जोगि हूं वा रूपकूं तेरे ॥ २ ॥ हरि कहै अरजन तोइ मेरो रूप दरसाऊं । जामैं ज-

गत यह तात एकहिं ठोर बतलावूँ ॥ है दिव्य ओर अनन्त नाना वरण जिहिं माँहीं। जिहिं लखें इचरज जगत सारे तोइ दरसाँ हीं ॥ ३ ॥ आदित्य वसु अरु रुद्र अश्विन मरु-तगण सारे। देख हु चराचर विश्व एक हु ठोरमैं न्यारे ॥ मैं दिव्य चक्षू देहुँ मेरो रूप देखनकूँ। यह चर्मचक्षू देख सकते नाँहि वा तनकूँ ॥ ४ ॥ फुरमाय योगेश्वर हरी यों रूप दरसायो। जामैं चराचर विश्व एकहि ठोर दृग आयो ॥ है वक्र नैन अनन्त इचरज जगतके सारे। ज्यो दिव्य भूषण दिव्य आयुधवृन्दकूँ धारे ॥ ५ ॥ ज्यो दिव्य माला दिव्य चन्दनतैं सुहायो है। ज्यो दिव्य वस्त्र धरें महाइचरज दिखायो है ॥ ज्यो एक वार हजार रवि नभ उदै हो जगमैं। वो तेज आवै जगतमैं उपमानके मगमैं ॥ ६ ॥ वो देखि रूप अनन्त अरजन रोम उठि आये। कर जोरि विनती करत हरिसों सीसकूँ नाये ॥ प्रभु रावरे तन माँहि सारे देव देखूँ हूँ। अरु भूत विधि शङ्कर ऋषी सब सर्प लेखूँ हूँ ॥ ७ ॥ वहु वदन कर लोचन उदर मोकूँ लखावै है। अरु आदि अन्त न मध्य मो दृग माँहि आवै है ॥ ज्यो मुकुट चक्र गदादि नाना शस्त्र लीन्हें हैं। अरु तेजराशी चहूँ वोरि प्रकाश दीन्हें है ॥ ८ ॥ मैं देखि सकतो नाथ नाँहीं रावरे तनकूँ। द्युति अर्क ज्यों चक चौंधि होवै मोइ लोचनकूँ ॥ तुम एक जानन जोगि अक्षर विश्वजिहिं माँहीं। तुम हो सनातन धर्मरक्षक पुरुष तन पाँहीं ॥ ९ ॥ तेरे पराक्रमको न मोकूँ अन्त हरि भासै। तेरे विलोचन जुगलमैं शशि सूर परकासै ॥ मुख मधि विदीपित अग्नि जग ये तेजतैं तापो। आकाश धरणीं मध्य अपनें रूपतैं व्यापो ॥ १० ॥ तू ही दिशाविदिशानमैं प्रभु मोइ दरसावै ॥ तो उग्र अद्भुत रूप लखि तिहुँ लोक घव-

रावै ॥ केते महर्षी सिद्ध सुर विंनती सुभाँवैं हैं । केतेक कर जुग जोरि तो पद सरन आँवैं हैं ॥ ११ ॥ आदित्य वसु अरु रुद्र विश्वेदेव मरुत हि जे । अरु साध्यँ अश्विन पितर किन्नर सिद्ध वृन्द हि जे । गन्धर्व सुरगण रावरो सव रूप निरखै है । इचरज गहै अरु आपपै प्रभु-पुष्प विरखै है ॥ ॥ १२ ॥ वहु कर वदन लोचन उदर पद रावरे तनमैं । दरसात वाढी डाढ डर मो कर रही मनमैं ॥ विकराल लोचन बदन लखि मो जीव घवरावै । धीरज न आवै चित्तमैं अरु शान्ति नाँ पावै ॥ १३ ॥ लखिकैं विशाल कराल मुख वहु दिश न जानूँ हूँ । कीजे कृपा अव चित्तमैं सुख तन न आनूँ हूँ ॥ कुरुनाथके सुत सो लियें संग भूमिपति सारे । जे द्रोण भीषम कर्ण मेरे वीर वल भारे ॥ १४ ॥ तेरे भयानक मुखनमैं धसते लखाँवैं हैं । केते दशन मधि नाथ मेरी दीठि आँवैं हैं ॥ जैसैं नदी सव समँदमैं परवेश करती है । त्यों पङ्क्ति सारे नृपनकी तो मुख हिं परती है ॥ १५ ॥ ज्यों पतँग परते अगनि अपनैं नाशके काजैं । त्यों नाश काजैं लोक यह तो मुखनमैं भाजैं ॥ परवेश करते जगतकूँ सव मुखनतैं खावो । तापो जगत करि तेज पूरण घोर दरसावो ॥ १६ ॥ किहिं काज यह अवतार मेरी विनति यह गहिये । कीजे कृपा परणाम है तुम कोन हो कहिये ॥ मैं काल हूँ जग नाश काजैं रूप मो जागै । मैं मारि हों सव नृपनकों ज्यो शस्त्र तू त्यागै ॥ १७ ॥ उठि लेहु जस अरि जीति भोग हु राजकूँ सारे । हैं नाम तेरो सकल नरपति तात मैं मारे ॥ जे द्रोण भीषम कर्ण नरपति और है जे ई । मो हते इनकूँ मारि लडि जस हाथमैं लेई ॥ १८ ॥ हरि वचन सुनि कर जोरिकैं काँपन लग्यो अ-

रजन । विनती करैं श्रीकृष्णतैं लागन लग्यो डरपन ॥ इचरज न ज्यो जग एवरो सव सुजस गावै है । अनुराग चित माँहीं धरैं अरु हर्ष पावै है ॥ १९ ॥ डरि भूत दितिसुतरच्छ सव चहुँ दिशहि भागैं हैं । अरु सिद्ध सारे विनति करि तो पद हि लागैं हैं ॥ वे क्यौं न लागैं चरन विधि हू आप उपजायो । यह जगत अक्षर रूप माँहीं तोइ निवसायो ॥ २० ॥ तुम आदि देव पुराण पूरुष विश्वकूँ धारो । तू विश्वरूप अनन्त जान्यौं जाननैं हारो ॥ तू वायु यम शशि वरुण विधि तन आप ही धारी । लाखन प्रणाम करूँ तुही है लोक उपकारी ॥ २१ ॥ तू जगत व्यापी याहितैं जग रावरो तन है । जानैं पराक्रमको न कोऊ अन्त जग जन है ॥ महिमा न जानैं नेहतैं परमादतैं ज्योंई । हे कृष्ण यादव यौं कही प्रभु माफ करि मोई ॥ २२ ॥ ज्यो खेलमैं अरु हँसनमैं अरु शयन आसनमैं । अरु सैंलमैं सतकार मैं नाँ कियो भोजनमैं ॥ सो माफ कीजे नाथ मो नाँह पार तो पावै । तुम हो पिता सव लोकके जग तोइ अरचावै ॥ २३ ॥ गुरुतैं गुरू हो देव सम नाँ आपकै कोई । तिहुँ लोकमैं तोतैं अधिक किँह भाँति को होई ॥ मो दण्डवत परणाम है प्रभु कृपा अव कीजे । अपराध सुतके पिता ज्यौं सव माफ कर दीजे ॥ २४ ॥ ज्यौं मित्र नाँहीं मित्रको अपराध देखै है । जैसैं पियारी दोषकौं प्यारी न लेखै है ॥ पूरव न देख्यो रूप सो लखि चित्त घवराई । वसुदेवनन्दन रूप करिकैं कृपा दरसाई ॥ २५ ॥ ये विश्वरूप अदश्य करि वो रूप दरसावैं । ज्यो मुकुट चक्र गदा धरैं भुज च्यारि दग आवैं ॥ मैं योगमायातैं कृपा करि रूप दरसायो । ज्यो तेजमय जग आदि जाको अन्त नाँ पायो

॥ २६ ॥ ये वेद जिग तप दानतैं देख न सकै कोई । वो देखि सकतो तात तो सम भक्त ज्यो होई ॥ यह रूप लखि घबराउ जिन तजि मूढपन भाई । भय त्यागि मन आनन्द हो वह रूप दरसाई ॥ २७ ॥ यों कहि हरी पूरव वहै तन आपको करिकैं । विशवास अरजनकूँ दियो घबराउ जिन डरिकैं ॥ अरजनै कहै तो रूप लखि यह देव जदुराई । आनन्द है मति मोह तजिकैं प्रकृतिमैं आई ॥ २८ ॥ यह रूप देख न सकत कोई कृष्ण भाखै है । सब देव हू यह रूप देखन चाह राखै है ॥ नाहिं वेद तप अरु दान पूजातैं लखावै है । ज्यो होय भक्त अनन्य मो तिंहि दीठि आवै है ॥ २९ ॥ ज्यो कर्म मो काजै करै पर मोई मानै है । ज्यो भक्त होवै विषयमैं नाहिं चाह आनै है ॥ निरवैर होकैं जगतमैं ज्यो रहत है भाई । समभाव राखै वहै मोकूँ सहज ही पाई ॥ ३० ॥

॥ उपदेशामृतघटी अध्याय ११ समाप्त ॥

॥ दोहा ॥

कोटि यज्ञ तप साधिकैं । ज्यो तन सुर न लखाय ।
भक्त जानि अरजन हरी । वो तन दियो दिखाय ॥ १ ॥

॥ अध्याय १२ प्रारम्भ ॥

॥ पद ॥

॥ राग तिलककामोद । ताल दीपचंदी ॥

हस्ताई ॥ अरजनकूँ हरिजूं समुझावै । निगुण सगुणको भेद बतावै ॥ अन्तरा ॥ अरजन कहै सगुण निरगुण दो । रूप तिहारे वेद बतावै ॥ दोय उपासक तो जग माँहीं । उनमैं उत्तम कोनं कहावै ॥ अरजकूँ० ॥ १ ॥ करम सकल

अरपन करि मेरै । सरधा राखि सगुण ज्यो ध्यावै ॥ ऐसो नर ज्यो जगकै माँहीं । वो अति उत्तम भक्त कहावै ॥ अरजनकूँ० ॥ २ ॥ ज्यो अचिन्त्य अव्यक्त रूप है । अविनाशी न वतायो जावै ॥ इन्द्रिय रोकि ताहि ज्यो ध्यावै । सो हू नर मोकूँ हीं पावै ॥ अरजनकूँ० ॥ ३ ॥ ज्यो जगमैं निरगुणकूँ ध्यावै । क्लेश वहै नर अधिक उंठावै ॥ ज्यो देहाभिमान नर राखै । निरगुण गति सुखतैं न गहावै ॥ अरजनकूँ० ॥ ४ ॥ जे सव कर्म मोय अरपन करि । हो अनन्य मोकूँ हीं ध्यावै ॥ मैं उद्धार करूँ हूँ उनको । जिनको मन मोतैं न हटावै ॥ अरजनकूँ० ॥ ५ ॥ मन मोमैं हीं धारन करि तू । मति मोतैं तन हू न चिगावै ॥ मो ही माँहीं वसै निश्चय । जव यह तेरो देह गिरावै ॥ अरजनकूँ० ॥ ६ ॥ ज्यो मन हो न सकै थिर मोमैं । तो मेरे सुमरनमैं लावै ॥ ज्यो मेरे सुमरन नहिं लागै । तो मो अरपन कर्म करावै ॥ अरजनकूँ० ॥ ७ ॥ मो काजै यह कर्म करत हू । सहज माँहिं हीं सिधिकूँ पावै ॥ ज्यो न सकै यह कर्म करनकूँ । तो याकूँ फलत्याग करावै ॥ अरजनकूँ० ॥ ८ ॥ सुमरनतैं सुनि ग्यान उत्तम है । ध्यान ग्यानतैं उत्तम कहावै ॥ फलको त्याग ध्यानतैं उत्तम । त्याग शान्तिकूँ सहज जनावै ॥ अरजनकूँ० ॥ ९ ॥

॥ पद ॥

॥ राग तिलककामोद । ताल दीपचंदी ॥

हस्ताई ॥ यह गुण जा माँहीं दरसावै । वो मेरो निज भक्त कहावै ॥ अन्तरा ॥ सव जीवनमैं वैर न जाको । मित्रपनों ओमैं द्रग आवै ॥ जाकै करुणा पूरण होई । ममता जामैं नाँहिं लखावै ॥ यह गुण० ॥ १ ॥ निरहङ्कार दुःख

सुख सम हो । दृढ निश्चय सन्तोष गहावै ॥ ज्यो मन बुद्धि करै अरपन मो । जातैं कोई खेद न पावै ॥ यह गुण० ॥ २ ॥ जातैं कोई भय नहिं पावै । ज्यो कोईतैं भय नहिं पावै ॥ हर्ष अमर्ष बेग जिहिं नाँहीं । जाकै भ्रम तन हू नहिं आवै ॥ यह गुण० ॥ ३ ॥ जाकै चाह चित्तमैं नाँहीं । उदासीन ज्यो नित्य लखावै ॥ होय चतुर शुचि आधि न राखै । जगके सब उद्योग तजावै ॥ यह गुण० ॥४ ॥ प्यारो देखि नाँहि ज्यो हरषै । अप्रिय देखि वैर नाहिं लावै । इच्छा सोच चित्त नहिं राखै । अशुभ शुभनकों नाँहि गणावै ॥ यह गुण० ॥ ५ ॥ शीत उष्ण अपमान मान ये । शत्रु मित्र सम जाहि लखावै ॥ जाकै मन आसक्ति न होई । स्तुति निन्दा एक हि मन लावै ॥ यह गुण० ॥ ६ ॥ यथा लाभ सन्तोष होय जिहिं । नियत वास ज्यो कबहु न पावै ॥ थिरमति धर्मामृत ये पीवै । सरधा मनके माँहि गहावै ॥ यह गुण० ॥ ७ ॥

॥ उपदेशामृतघटी अध्याय १२ समाप्त ॥

॥ दोहा ॥

निरगुण पथ अति कठिन यों । समुझि चित्तकै माँहिं ॥
कृष्ण चरन युगको सरन । सत पथ त्यागै नाँहिं ॥ १ ॥

इति श्रीजयपुरीयसँस्कृतपाठशालाध्यापकश्रीदधीचिवंशोद्भवपण्डितगोपीनाथविरचितायाम् उपदेशामृतघट्याम् उपासनाविषयः समाप्तः ॥

अथ विज्ञानविषयः

॥ अध्यांय १३ प्रारम्भ ॥

॥ लावणी ॥

॥ राग तिलककामोद ॥ ताल कवाली ॥

हस्ताई ॥ जीव ईशमैं भेद न तन हू कृष्ण आप फुरमावै है। यौं अरजनके, चित्तके सब सन्देह मिटावै है॥ ॥ **अन्तरा** ॥ अरजन पूछै प्रकृति कहा अरु पुरुष कौनकूँ कहते हैं। खेत्र कहा है, ओर खेत्रज्ञ नाम किँहि लहते है॥ ज्ञान कहा को वस्तु जाननैं जोगि मोइ समुझा दीजे। दीनबन्धु हो, दया करि मोकूँ अपनौं करि लीजे॥ कृष्ण कहै यह देह खेत्र खेत्रज्ञ याहि जानन हारो। सो हू मैं ही, तात सब खेत्रनमैं यौं निरधारो॥ इन दोनूँको ग्यान मोइ मत मानि वेद हू गावै है। यौं अरजनके, चित्तके सब सन्देह मिटावै है॥ जीव०। यौं अरजनके; ॥ १ ॥ खेत्र तात वो जैसो जिन करि पुनि विकारकूँ पावै है। जातैं होवै, ओर जिन भेदनतैं दग आवै है॥ खेत्रग्य है ज्यो है प्रभाव ताको सक्षेप सुनावूँ हूँ। अब तू सुनिये, तोइ नीकी विधितैं समझावूँ हूँ॥ ऋषि वशिष्ठकूँ आदि लेइ बहु भाँति योगमैं गायो है। काम्य वेद हू, याहि बहु देवरूप दरसायो है॥ ब्रह्म सूत्र पद हेतुमान निश्चय करिकैं बतलावै है। यौं अरजनके; ॥ जीव०। यौं अरजनके; ॥ २ ॥ अहङ्कार मन भूत बुद्धि अव्यक्त ओर इन्द्रिय गणिये। पाँच विषय हू, वैर सुख दुख इच्छा धीरज भणिये॥ ज्ञान देह यह खेत्र तोइ सविकार तात समुझायो है। समुझि चित्तमैं, नाँहिं वि-

सतार तोइ बतलायो है ॥ साधन जे हैं कहूँ ग्यानके मान दम्भकूँ तजि देवै । हिंसा त्यागै, छमा अरु सीधेपनकूँ गहि-लेवै ॥ सद्गुरु सेवा करै शौच राखै थिरता बतलावै है । यौं अरजनके; ॥ जीव० ॥ यौं अरजनके; ॥ ३ ॥ मनको दम वैराग विषयमैं अनहङ्कार मोति व्याधी । जनम जरामैं, दुःख अरु दोष दीठि गाढी साधी ॥ त्याग नेहको पुत्रादिकमैं अरु अध्यास नाँहि करनौं । प्रिय अप्रियके, लाभमैं चित्त एकरस ही धरनौं ॥ मोमैं भक्ति अनन्य शुद्ध एकान्त देशमैं रति होई । बहुत जनौंकी, सभामैं जाकी रति नाँहीं जोई ॥ निष्ठा आतम ग्यान मुक्ति ताके फलमैं मन धावै है । यौं अरजनके; ॥ जीव० ॥ यौं अरजनके; ॥ ४ ॥ साधन ये है ग्यान याहितैं ग्यान नाम इनको जानौं । ज्यो विपरीते, ताहि अज्ञान नाम करि पहिचानौं ॥ अबै जाननैं जोगि तोइ समझावूँ चित दे सुनि लीजे । जाके जानैं, अमरपद सहज हि कर माँहीं कीजे ॥ ब्रह्म वस्तु है आदि न जाको मेरो वह पर रूप सही । विश्वरूप है, विश्वकूँ करतो है आवरण वही ॥ सब इन्द्रिय अरु उनके गुणकूँ ज्यों प्रत्यक्ष दिखावै है । यौं अरजनके; ॥ जीव० ॥ यौं अरजनके; ॥५॥ सब इन्द्रिय हैं जाकै नाँहीं कोईतैं न सङ्ग करतो । सबकूँ धारैं, निगुण सब ही गुणको पालन धरतो ॥ सब भूतनकै भीतर बाहिर चर अरु अचर ताहि जानी । सूछम यातैं, नाँहि जान्यौं जावै ऐसैं मानी ॥ मूढनकै ज्यो दूर देश ज्यौं पण्डितकै पास हि भासै । सर्व भूतनमैं, एक हू नाना जैसो परकासै ॥ सारो जग उपजावै पोषै प्रलय कालमैं खावै है । यौं अरजनके; ॥ जीव० ॥ यौं अरजनके; ॥ ६ ॥ ज्यो प्रकाशको हू प्रकाश है तमसैं पर ज्यो कहिये है । ज्ञान वही

है, ज्ञानसाधन अरु वातैं लहिये है ॥ सब भूतनके हृदय माँहि थित ज्यो है जानन जोगि वही । ऐसैं खेतर, ग्यान अरु जोगि जानैं कह्यो सही ॥ मेरो भक्त अनन्य होय सो इन तीनूंकूं जानैं है । जानि इनूंकूं ओर मो रूप होय थिति आनैं है ॥ हरि यों कहिकैं प्रकृति पुरुषको भेद ताहि दरसावै है ॥ यौं अरजनके; ॥ जीव० ॥ यौं अरजनके; ॥ ७ ॥ प्रकृति पुरुष यह दो अनादि हैं ज्यो विकार गुण भासै है । कारज कारण, हेतु हो प्रकृती ही परकासै है ॥ सुख दुःखनके भोग माँहि है हेतु पुरुष ऐसैं मानी । वहै पुरुष हू, प्रकृतिमैं रहिकैं भोगै यों जानी ॥ पुरुष गुणनको सङ्ग पायकैं नीचँ ऊँन योनी जावै । इनकूं देखै, तात वो परम पुरुष यों कहलावै ॥ वो ही परमातम परमेसुर भरता नाम कहावै है । यौं अरजनके; ॥ जीव० ॥ यौं अरजनके; ॥ ८ ॥ प्रकृति पुरुषकों यों विवेक करि ज्यो कोई जन जानैं है । विधि हू त्यागैं, वहै नर फेरि जन्म नाहिं आनैं है ॥ ध्यान धारि कोई आतमकूं देह माँहि मनतैं देखै । कोई याकूं, साङ्ख्य करि योग साधि कोई लेखै ॥ कोई याकूं कर्मयोग करि चित्त माँहि थित करते हैं । मन्दबुद्धि जे, लेइ उपदेश उपासन धरते हैं ॥ सरधा है उपदेश माँहि यातैं वे हू तरजावै हैं । यौं अरजनके; ॥ जीव० ॥ यौं अरजनके; ॥ ९ ॥ खेत्र ओर खेत्रज्ञ योगतैं सारो जग उपजावै है । थावर जंगम, जानि तू ज्यो तेरे दृग आवै है ॥ सब भूतनके माँहि एकरस ज्यो परमेसुर देखै है । नाश होत हू, जगतको जाको नाश न लेखै है ॥ यौं देखै वो ही नर देखै ओर अन्ध ऐसैं मानैं । सारे जगमैं, तात ज्यो समरस परमेसुर जानैं ॥ वो न हतै आतमतैं आतम ओर परम गति

पावै है । यों अरजनके; ॥ जीव० ॥ यों अरजनके; ॥१०॥
सारे कुरम करै प्रकृती ही या विधतैं ज्यो देखै है । वो ही
आतम, अकर्ता रूप तात दृग लेखै है ॥ सर्व भूतनके भेद
एकही मैं जाकै दृग आवैं है । अरु उतपत्ती, तात सुनि वहै
ब्रह्म हो जावै है ॥ है अनादि निरगुण परमातम जांको नाश
कवहु नाँहीं । नाँहिं करै है, लिपै है नाँहिं देहहूके माँहीं ॥
ज्यों व्यापक सूछम है यातैं नभ न लेपकूँ पावै है । यों अ-
रजनके; ॥ जीव० ॥ यों अरजनके; ॥ ११ ॥ ज्यों रवि एक
जगत परकासै त्यों खेत्रज्ञ खेत्र सारो । परकासै है, रहत है
सव खेत्रनहींतैं न्यारो ॥ खेत्र ओर खेत्रज्ञ इनूँको ज्यो अ-
न्तर वतलायो है । ज्ञान दीठितैं, जिनूँनैं वाँ अन्तरकूँ पायो
है ॥ यहै प्रकृतितैं भूत तात जे साधन करि छुटि जावैं हैं ।
वै सव साधन, जिनूँकै नीकी विधि दृग आवैं हैं ॥ वेही
नर या जगके माँहीं परपद सहज लहावै है । यों अरजनके;॥
जीव० ॥ यों अरजनके; ॥ १२ ॥

॥ उपदेशामृतघटी अध्याय १३ समाप्त ॥

॥ पद ॥

॥ राग सोरठ ॥ ताल रूपक ॥

हस्ताई ॥ अजित नृप ऐसैं कहै ॥ अन्तरा ॥ खेत्र
ओर खेत्रज्ञ विनिर्णय । ज्यो मति माँहिं चहै ॥ यह अध्याय
मनन करि देखै । निश्चय वोध लहै ॥ अजित० ॥ १ ॥ यह
नरदेह सहज जिन जानों । जानों कठिन यहै । यह तन
पाय ग्यान नहिं साधै । जगमैं मूढ वहै ॥ अजित० ॥ २ ॥
त्यागै ग्यान ओर पथ लागै । वातैं मुकति चहै ॥ वाको
जनम मरन नहिं छूटै । नाना ताप सहै ॥ अजित० ॥ ३ ॥

गोपीनाथ यहै सुनि वाणीं । आशिष वचन वहै ॥ लाख व-
रष जीवो जग माँहीं । ये ही सुमति रहै ॥ अजित० ॥ ४ ॥

॥ अध्याय १४ प्रारम्भ ॥

॥ अष्टपदी ॥

॥ राग जँगला । ताल कवाली ॥

हस्ताई ॥ प्रकृति पुरुष दो हैं सुतन्त्र नाहिं । यों अरज-
नतैं कृष्ण आप कहि ॥ अन्तरा ॥ परम ग्यान समुझावूँ
तोकूं । उत्तम तात लखै ज्यो मोकूं ॥ जाकूं पाय बहुत मुनि
राई । परम सिद्धिगति सहज हि पाई ॥ यह लहि ग्यान
होय मो रूपा । परत नाँहि नर यह भव कूपा ॥ सृष्टि होत
तब जनमत नाँहीं । दुख नांहि लहत प्रलयके माँहीं ॥ प्र-
कृति० ॥१॥ प्रकृति योनि मेरी पहिचानी । तामैं गर्भ धरूं यौं
मानी ॥ तातैं सकल भूत उपजावैं । नर आदिक जे तन
दरसावैं ॥ तिनकी प्रकृति जानिलै माई । पिता बीज यों
सो मैं भाई ॥ रज तम सत्त्व तात गुण ज्योई । होय प्रकृ-
तितैं इँहि विधि जोई ॥ प्रकृति० ॥ २ ॥ अव्यय जीव देह
जब लेवै । गुण तीनों बन्धन करि देवै ॥ अब तोकूं बन्ध-
नकी रीती । कहूँ तात सुनि देकैं प्रीती ॥ भासुर शान्त
सत्त्व जब आवै । सुख अरु ग्यान माँहि लपटावै ॥ रजको
रूप राग लखि लेई । तृष्णां सङ्ग दोय रचि देई ॥ प्रकृति०
॥ ३ ॥ रज तृष्णा अरु सङ्ग उपाई । जीव कर्म बन्धनमैं
लाई ॥ तम अज्ञान आप जनमावै । सब जीवनकूं मोह क-
रावै ॥ आलस अरु परमाद हि धारै । निद्राके बन्धनमैं
डारै ॥ सुखमैं सत्त्व देय लिपटाई । कर्म माँहि रज देय गि-
राई ॥ प्रकृति० ॥ ४ ॥ ज्ञान तमोगुण तातै । ढकावै तब

परमाद वृद्धिकूँ पावै ॥ सत्त्व होयं रज तम हिं दवाई । रज दवाय तम सत व्है भाई ॥ तम दवाय जव रज सत लेई । तव अपनें कारज करते ई ॥ सुख अरु ग्यान वढे दरसावै । सत्त्व वढ्यो ऐसें चित लावै ॥ प्रकृति० ॥ ५ ॥ लोभ प्रवृत्ति कर्म आरम्भा । शान्ति त्याग इच्छा अरु दम्भा ॥ जाकै रज वृद्धीकूँ पावै । यह लच्छन ता माँहिं लखावै ॥ अप्रकाश परमाद दोइ ये । मोह अनुधम ओर जोइये ॥ तम वृद्धी जा माँहाँ होई । यह लच्छन ता माँहीं जोई ॥ प्रकृति० ॥ ६ ॥ सत्त्व वधें ज्यो तनकूँ त्यागै । उत्तम लोक गमन वो लागै ॥ वधें रजोगुण तन तजि देई । जनम कर्म सङ्गिनमैं लेई ॥ तमकों वढें शरीर गिरावै । तो नर मूढयोनिमें जावै ॥ संत्त्व रजोगुण तम फल देखी । सुकृत दुःख अज्ञान हिं लेखी ॥ प्रकृति० ॥ ७ ॥ सत्त्व ग्यानकूँ दे उपजाई । लोभ रजोगुण दे जनमाई ॥ तम परमाद मोह जनमावै । अरु अज्ञान तात उपजावै ॥ सत्त्व रजोगुण तम मति पाई । ऊरध मध्य अधोगति जाई ॥ यों प्रकृती गुण जग उपजावै । इँहिं विवेक करि मुक्ति सिधावै ॥ प्रकृति० ॥८॥ गुण विन ओर न करता लेखै । परैं गुणनतैं निजकूँ देखै ॥ ब्रह्मरूप वो नर हो जावै । जनम मरन दुख सकल नसावै ॥ अरजन ऐसें विनति सुनाई । गुणातीत किँहिं विधि परिचाई ॥ किँहिं आचार रहै वो नर धरि । किँहिं साधन करि गुण जावै तरि ॥ प्रकृति० ॥ ९ ॥ तीनों गुणके कारज ज्योंई । देखि वैर इच्छा नहिं होई ॥ जाकै ज्ञान प्रवृत्ती मोहा । गयें रहें नाहिं चाह न छोहा ॥ उदासीनसो ज्यो दरसावै । सुख दुःखनतैं तन न चिगावै ॥ गुण तरतै ऐसी विधि जानी । चुप्प होय वैठै यों मानी ॥ प्रकृति० ॥ १० ॥

ज्यो दृढ आतम थितिकूँ पांई। सुख दुख दोनूँ एक लखाई ॥ उपल लोह कंचनं सम होई। प्रिय अप्रियमैं समरस जोई ॥ स्तुति निन्दा दो सम मन लावै। सम अपमान मान परिचावै ॥ शत्रु मित्र दोनूँ सम भासै। जगके सब आरम्भ विनासै ॥ प्रकृति० ॥ ११ ॥ ऐसो नर ज्यो जगमैं भाई। गुणातीत यह नाम धराई ॥ भक्तियोग करि मोकूँ सेवै। ब्रह्मरूप वो गुण तरि लेवै ॥ ब्रह्म एकरस ज्यो न विनासै। सो मेरे तनसैं परकासै ॥ धर्म अखण्ड ओर सुख होई। सो मेरो तन इँहि विधि जोई ॥ प्रकृति० ॥ १२ ॥

॥ उपदेशामृतघटी अध्याय १४ समाप्त ॥

॥ पद ॥

॥ राग सोरठ। ताल तिताला ॥

हस्ताई ॥ समुझो त्रिगुण हिं जग उपजावै २ ॥ अन्तरा ॥ प्रकृति पुरुष दो गुणसङ्गति विन। तनक न वस्तु उपावै ॥ समुझो० ॥ SS ॥ आतम एक अखण्ड एकरस। गुणतैं भिन्न लखावै ॥ अजित ताहि लखिले ज्यो कोई। ब्रह्मरूप हो जावै ॥ समुझो० ॥ १ ॥

॥ अध्याय १५ प्रारम्भ ॥

॥ पद ॥

॥ राग सोरठ ॥ ताल तेवरा ॥

हस्ताई ॥ हरि वैराग करि जुत ग्यान २। कहत अरजनकूँ कृपा करि। भरम सकल नसान ॥ हरि० ॥ अन्तरा ॥ संसार तरुवर मूल याको। जानि पुरुष पुरान ॥ शाख इँहि विधि आदि जानहु। छंद याके पान ॥ हरि० ॥ १ ॥ वि-

-श्य हैं नव पत्र याके । त्रिगुण करत सिंचान ॥ नाश. याको होत नाँहीं । कंहत वेद प्रमान ॥ हरि० ॥ २ ॥ रूप आदि न अन्त याको । लेत कोउ पिछान ॥ लेइ खड्ग असङ्ग काटै । याहि पुरुष सुजान ॥ हरि० ॥ ३ ॥ काटि याकूँ तात हेरै । वहै पद निरवान ॥ मुख्य साधन भक्ति याको । क-हत वेद पुरान ॥ हरि० ॥ ४ ॥ मोह सङ्ग न दोष जाकै । तनकहू नहिं मान ॥ काम जाकै तनक नाँहीं । ज्ञान है पर-धान ॥ हरि० ॥ ५ ॥ द्वंद सुख दुख ज्यो तजै वो । पुरुष पाकैं ग्यान ॥ वहै पद सहज हि लहै ज्यो । नाशको नहिं थान ॥ हरि० ॥ ६ ॥

॥ पद ॥

॥ राग सोरठ । ताल तिताला ॥

• इस्ताई ॥ आतम निज रूप बतावै । हरिजू अरजनकूँ समुझावै ॥ अन्तरा ॥ जाको भान सूर शशि पावक । तनहू नाँहिं करावै ॥ जाकूँ पाइ ग्यान करि मुनिजन । फेर न जगमैं आवै ॥ हरिजू० ॥ १ ॥ मेरो अंश जीव यह जानौं । ज्यो न नाशकूँ पावै ॥ प्रकृति माँहिं गत इन्द्रिय मनकूँ । खैंचि जगतमैं लावै ॥ हरिजू० ॥ २ ॥ त्यागि एक तन आन लहै तब । इनकूँ सँग ले जावै ॥ जैसैं वायु कुसुमगन्ध-नकूँ । अपनें सङ्ग उडावै ॥ हरिजू० ॥ ३ ॥ जीव यहै इ-न्द्रिय मन लेकैं । विषयनमैं लिप्टावै ॥ गुण जुत याहि लहै ग्यानी जन । मूरख नाँहिं लखावै ॥ हरिजू० ॥ ४ ॥ ध्यान साधि योगी जन याकूँ । देह माँहिं दृग लावै ॥ जिनके मन न शुद्ध वे पचि हू । याकूँ नाँहिं लहावै ॥ हरिजू० ॥ ५ ॥ पावक सूर चन्द्रकै माँहीं । ज्यो यह तेज लखावै ॥ वहै तेज मेरो ही जानहु । सन्देह न मन लावै ॥ हरिजू० ॥ ६ ॥ मैंहीं

तेज दियो धरणीकूँ। यातैं विश्व धरावै ॥ सोम होइ ओ-षधि सब पोषूँ । सारे रस उपजावै ॥ हरिजू० ॥ ७ ॥ वड-वानल हो रहूँ उदरमैं । जातैं अन्न पचावै ॥ अंतरजामी सब जगको मैं । मोतैं स्मृतिं जनमावै ॥ हरिजू० ॥ ८ ॥ ग्यान अग्यान होय मोतैं हीं । मोंतैं वेद उपावै ॥ सब वेदान्त रचे मैनैं हीं । जिनतैं ज्ञान लहावै ॥ हरिजू० ॥ ९ ॥ क्षर अक्षर यह पुरुष दोय हैं । क्षर यह भूत कहावै ॥ ज्यो कूटस्थ पुरुष चेतन है । अक्षर नाम हि पावै ॥ हरिजू० ॥ १० ॥ उत्तम पुरुष ओर है इनतैं । परमातम जिहिं गावै ॥ ज्यो धारैं जग नाँहिं नसै है । ईसुर नाम कहावै ॥ हरिजू० ॥ ११ ॥ मैं क्षर अक्षरतैं उत्तम यों । लोक वेद वतलावै ॥ यातैं पुरुषोतम जग सारो । मेरो नाम लहावै ॥ हरिजू० ॥ १२ ॥ ज्यो याविध मोकूँ जानत है । सो नर भक्त कहावै ॥ सर्वरूप करि मोकूँ भजिकैं । ज्ञान सिद्धिकूँ पावैं ॥ हरिजू० ॥ १३ ॥ ज्ञान पाय कृतकृत्य होयकैं । जीवनमुकत कहावैं ॥ यह उ-पदेश कियो ज्यो तोकूँ । तातैं तन न चिगावै ॥हरिजू०॥१४॥

॥ उपदेशामृतघटी अध्याय १९ समाप्त ॥

॥ पद ॥

॥ राग सोरठ । ताल तिताला ॥

हस्ताई ॥ भजिये नन्दनँदन जदुराई २ । ज्यो वैराग ग्यान अरजनकूँ । दीन्हे मेलि वताई ॥भजिये०॥ अन्तरा॥ सारे जगके भरम हरणकूँ । गीता ज्यो उपजाई ॥ ज्यो अ-वतार लेय धरणीमैं । पूरण ब्रह्म कहाई ॥ भजिये० ॥ १ ॥ अजितसिंह महाराज खेतडी । गीता ज्यो हरि गाई ॥ गो-पीनाथ धारि सरधा सुनि । ल्यो सन्देह मिटाई ॥ भ-जिये० ॥ २ ॥

॥ अध्याय १६ प्रारम्भ ॥

॥ लावणी ॥

॥ राग तिलककामोद । ताल-कवाली ॥

हस्ताई ॥ त्यागि आसुरी संपत्ति दैवी ज्यो नर आप गहावै है । मुक्त होय वो, कृष्ण यौं अरजनकूँ समुझावै है ॥ ॥ अन्तरा ॥ भयको त्याग सत्वकी शुद्धी ज्ञानयोगकी थिति होई । दान ओर दम, यज्ञ तप वेद पाठनिष्ठा जोई ॥ हिंसा त्याग सत्यको कहनौं सीधापन नाहिं रोष करै । चुगली त्यागै, शान्ति अरु दया सकलके माँहिं धरै ॥ लोभ त्याग नरमी अकरममैं सब जगतैं लज्जा पाई । निफल काममैं, प्रीति नाँहिं अरु उदारपन हो भाई ॥ क्षमा तेज धीरज अरु शुचिता वैर मान नहिं पावै है । मुक्त होय वो; ॥ त्यागि० । मुक्त०, ॥ १ ॥ यह दैवी संपत्ति आसुरी अबैं तोय बतलावूँ हूँ । सुनि चित देकैं, दम्भ अभिमान कोप यह गावूँ हूँ ॥ दर्प ओर अज्ञान कठिनता तू असुरनकी लै जानी । संपति दैवी, मुक्ति दे बन्ध आसुरीतैं मानी ॥ तू दैवी संपतिमैं जनम्यों तनक न सोच चित्त लाई । जीव दोयविध, जगतमैं दैव ओर आसुर भाई ॥ कह्यो दैव विसतार लेयकैं आसुर अब बतलावै है । मुक्त होय वो; ॥ त्यागि० । मुक्त०, ॥ २ ॥ आसुर नर आचार शौच अरु सत्य नाँहिं मन आनैं है । ओर निवृत्ती, प्रवृत्ती तन हू नाँ पहिचानैं है ॥ ईश न करता जगको जानैं वेद पुरान न मानैं है । जगत भेद ये, सुभावहितैं दीसत यौं जानैं है ॥ जग उतपतिमैं स्त्रीपुरुषनको काम हेतु ऐसैं देखै । यह मति लेकैं, मन्दमति उग्र कर्महीकूँ लेखै ॥ जगके नाश काज जग माँहीं वो उतपतिकूँ पावै है । मुक्त होय वो; ॥ त्यागि० । मुक्त०,

॥ ३ ॥ काम दम्भ अरु मान लेयकैं सब जगकूं उपदेशै है। तुच्छ देवता; पूजनादिक माहीं परवेशै है ॥ चिन्ता अतुल चित्तमैं राखै कामभोगमैं नित्य रहै। ता ही काजै, द्रव्य अन्याय रीतितैं तात गहै ॥ यह पायो यह सिध करिलेहूँ इतनों मेरे पास सही। यह अरि मासो, मारि हूँ ओर शत्रु यों कहै सही ॥ मैं ईसुर बलवान सुखी यों आपो सिद्ध बतावै है। मुक्त होय वो; ॥ त्यागि०। मुक्त०, ॥ ४ ॥ मेरै धन मेरै सम को है मैं वहु यज्ञ करावूँगो। दान करूंगो, चित्त मेरे आनन्द वढावूँगो ॥ ऐसो नर अज्ञान मोहवश होय नरकमैं जावै है। मोहजालमैं, फस्यो ज्यो काम भोग रति लावै है॥ ज्यो आपै अभिमान धरै है धनमस्ती जिनकै छाई। यज्ञ करैं वे, वेद विधि दम्भ पाय उलँघा जाई ॥ अहङ्कार बल दर्प काम उनके चित माँहिं वढावै है। मुक्त होय वो;॥ त्यागि०। मुक्त०, ॥ ५ ॥ मेरे ओर आनके तनमैं केवल मोतैं वैर करैं। उन नीचनकूं, तजूं मैं नीचयोनिमैं जन्म धरैं॥ जन्म जन्ममैं असुरयोनिकूं फेरि फेरि वे पावै है। मोइ लहै नाँ, अधम गति यौंहीतैं हो जावै है ॥ काम कोप अरु लोभ नरकके मारग तीन बताये हैं। इनकूं त्यागे, वहै नर परम सिद्धिकूं पाये हैं ॥ यातैं उत्तम लोक जगतमैं इनको त्याग करावै है। मुक्त होय वो; ॥ त्यागि०। मुक्त०, ॥ ६ ॥ तीनूं ये तम मारग लखिकैं इनको ज्यो नर त्याग करै। साधन साधै, तात वो ज्ञान सिद्धिकूं सहज धरै ॥ स्मृति अरु वेद पुराण माँहिं ज्यो विधि ताकूं ज्यो तजि देवै। ज्ञान न पावै, वहै नर सुख पर गति नाहीं लेवै ॥ करण ओर अकरणके माँहीं श्रुति पुराण जा विधि भाखै। धर्म वही है, पुरुष ऐसैं दृढ करि मनमैं राखै ॥ तैं हू इनकूं देखि करम करि याहीतैं

सिधि पावै है। मुक्त होय वो; ॥ त्यागि० । मुक्त०, ॥७॥

॥ उपदेशामृतघटी अध्याय १६ समाप्त ॥

॥ पद ॥

॥ राग धुनि जिला । ताल कवाली ॥

हस्ताई ॥ वासुदेवके ईशपनेंमैं, तनक न मन संन्देह रह्यो ॥ अन्तरा ॥ धन्य धन्य अरजन वडभागी । जानैं नैनन दरस लह्यो ॥ जापैं करुणाकरि करुणानिधि । गीताको उपदेश कह्यो ॥ वासुदेवके० ॥ १ ॥ मोह समँदमैं डूवत लखिकैं । अरजनकूँ कर माँहि गह्यो ॥ अजित ताहि उपदेश सुनत ही । भेदभरमको शिखर ढह्यो ॥ वासुदेवके० ॥ २ ॥

॥ अध्याय १७ प्रारम्भ ॥

॥ पद ॥

॥ राग धुनि जिला । ताल कवाली ॥

हस्ताई ॥ अरजनकूँ समुझावै है हरि, अरजनकूँ समुझावै है २ । सवसाधनमैं सरधा सतकी । हरिजू मुख्य वतावै है ॥ यातैं गौण भेद सरधाके । अरजनकूँ समुझावै है ॥ अरजनकूँ० ॥ अन्तरा ॥ त्यागि वेदविधि सरधा धरिकैं । ज्यो नर यज्ञ रचावै है ॥ सत्त्व रजोगुण तममैं इनकी । सरधा कोन कहावै है ॥ अरजनकूँ० ॥ सव० । अरजनकूँ० ॥ १ ॥ तीन भाँति जीवनकै सरधा । पूरव कर्म उपावैं हैं ॥ सात्त्विक राजस तामस ऐसैं । उनके नाम कहावैं हैं ॥ अरजनकूँ० ॥ सव० । अरजनकूँ० ॥ २ ॥ सात्त्विक देव यजन करते हैं । राजस यक्ष यजावैं हैं ॥ प्रेत भूतगण इनकूँ जगमैं । तामस नर अरचावैं हैं ॥ अरजनकूँ० ॥ सव० । अरजनकूँ० ॥ ३ ॥ अहङ्कार अरु काम दम्भतैं । ज्यो तप

घोर लहावै है ॥ त्यागि वेदविधि अपनें तनके। सारे भूत-
सुकावै है ॥ अरजनकूँ० ॥ सव० । अरजनकूँ० ॥ ४ ॥ मेरे
वचन तजे हैं यातैं । आसुर पुरुष कहावै है ॥ यौं कहि
भोजन यज्ञ दान तप । तीन भाँति दरसावै है ॥ अरज-
नकूँ० ॥ सव० । अरजनकूँ० ॥ ५ ॥ आयु सत्त्व बल सुख
अरु रुचिकूँ । ज्यो भोजन वरधावै है ॥ स्निग्ध रोगहर थिर
अरु रसयुत । सात्त्विक वहै कहावै है ॥ अरजनकूँ० ॥
सव० । अरजनकूँ० ॥ ६ ॥ आमल लवण उष्ण कटु ती-
-छन । लूखो दाह करावै है ॥ ज्योभोजन दुख रोग उपावै ।
राजस ताहि गहावै है ॥ अरजनकूँ० ॥ सव० । अरजनकूँ०
॥ ७ ॥ अति शीतल गतरस दुरगंधी । ज्यो उच्छिष्ट कहावै
है ॥ भोजन ज्यो अपवित्र होय वह । तामस लोक लहावै
है ॥ अरजनकूँ ० ॥ सव० । अरजनकूँ० ॥ ८ ॥ फलकूँ
त्यागि वेदविधि लखिकैं । नर ज्यो यज्ञ रचावै है ॥ समा-
धानकूँ धारि चित्तमैं । सात्त्विक ताहि वतावै है ॥ अरज-
नकूँ० ॥ सव० । अरजनकूँ० ॥ ९ ॥ फलको काम दम्भ
यह धरिकैं । यज्ञ माँहि मति लावै है ॥ यज्ञ वहै कुन्तीसुत
जगमैं राजस नाम कहावै है ॥ अरजनकूँ० ॥ सव० । अर-
जनकूँ० ॥ १० ॥ जहाँ दक्षिणा मत्र न विधि है । सरधा
जहाँ न पावै है ॥ जहाँ न अन्न विप्र काजै सो । तामस यज्ञ
कहावै है ॥ अरजनकूँ० ॥ सव० । अरजनकूँ ॥ ११ ॥ देव द्विज
गुरु पण्डित पूजा । मृदुता शौच वतावै है ॥ ब्रह्मचर्य हिंसाको
तजनों । तप शारीर वतावैं है ॥ अरजनकूँ० ॥ सव० ।
अरजनकूँ० ॥ १२ ॥ जातैं भय न सत्य वाणी ज्यो । प्रिय
हित ज्यो दरसावै है ॥ वेदपाठको नित ही करनों । तप
वाचनिक वतावै है ॥ अरजनकूँ० ॥ सव० । अरजनकूँ०

॥ १३ ॥ मनन कोपको त्याग सुच्छपन, । मनको दमन वतावै है ॥ भावशुद्धि सव कारज माँहीं । मानस तप दरसावै है ॥ अरजनकूँ० ॥ सव० । अरजनकूँ० ॥ १४ ॥ सरधा करि फल त्यागि यहै तप । सात्त्विक नाम गहावै है ॥ दम्भ मान पूजा काजै तप । राजस नाम लहावै है ॥ अरजनकूँ० ॥ सव० ॥ अरजनकूँ० ॥ १५ ॥ हठ करि आतम पीडा करि तप । ज्यो नर आप गहावै है ॥ परके नाश काज ज्यो तप सो । तामस नाम कहावै है ॥ अरजनकूँ० ॥ सव० । अरजनकूँ० ॥ १६ ॥ विन उपकार लखैं दे देनों । ये ही ज्यो चित लावै है ॥ देश काल अरु पात्र देखि दे । सात्त्विक दान वतावै है ॥ अरजनकूँ० ॥ सव० । अरजनकूँ० ॥ १७ ॥ लखि उपकार देइ फल चाहै । देइ दुःख मन लावै है ॥ ऐसो दान जगतकैं माँहीं । राजस नाम लहावै है ॥ अरजनकूँ ० ॥ सव० । अरजनकूँ० ॥ १८ ॥ देश काल अरु पात्र लखैं विन । ज्यो नर दान रचावै है ॥ विन सतकार अवज्ञा करि दे । तामस दान कहावै है ॥ अरजनकूँ० ॥ सव० । अरजनकूँ० ॥ १९ ॥ प्रणव ओर तत् सत् यह तीनूं । ब्रह्मनाम दरसावै है । ब्राह्मण वेद यज्ञ यह तीनूं । वाहीतैं उपजावै है ॥ अरजनकूँ० ॥ सव० । अरजनकूँ० ॥ २० ॥ तातैं यज्ञ दान तप इनकूं । वैदिक जवै रचावै है ॥ आदि माँहिं सवहीकै उनकै । प्रणव वचनमैं लावै है ॥ अरजनकूँ० ॥ सव० अरजनकूँ० ॥ २१ ॥ मुक्ति कामनाँ मनमैं धरिकैं । ज्यो नर कर्म रचावै है । तत् ऐसैं कहि दान यज्ञ तप । नीकी विधि उपजावै है ॥ अरजनकूँ० ॥ सव० । अरजनकूँ० ॥ २२ ॥ सत्ता मङ्गल आदि अर्थमैं । सत् यह शब्द कहावै है ॥ सत्के अर्थ कर्म हू सत् यों । श्रीमुखतैं फु-

रमावै है ॥ अरजनकूँ० ॥ सब० । अरजनकूँ० ॥ २३ ॥ सरधा विन तप दान होम सब । असत् नामकूँ पावै है ॥ दोनूं लोक माँहि ताको फल । कोई नाँहि लहावै है ॥ अरजनकूँ० ॥ सब० । अरजनकूँ० ॥ २४ ॥

॥ उपदेशामृतघटी अध्याय १७ समाप्त ॥

॥ पद ॥

॥ राग सोरठ । ताल तेवरा ॥

हस्ताई ॥ ये नर सरधा सतकी धारै २ । ऐसी विधि अजित उचारै । ये नर० ॥ अन्तरा ॥ सतकी सरधा धरिकैं ज्यो नर । रज तम सरधा मारै ॥ ज्ञान माँहि अधिकारी होवै । भेद भरम सब जारै ॥ ये नर० ॥ १ ॥ ज्यो नर रजतमकी सरधा धरि । लगै कर्मकी लारैं ॥ वो नर तनक हु ग्यान लहै नहिं । बहुविध लहत विकारै ॥ ये नर० ॥ २ ॥ सतकी सरधा धरि गीताको । ज्यो उपदेश विचारै ॥ निश्चय ग्यानसिद्धिकूँ पावै । तमको पटल विडारै ॥ ये नर० ॥ ३ ॥ नृप पद मृदु वय मति ऐसी लखि । गोपीनाथ विचारै ॥ जापैं कृपा आप हरि करते । कब हु न ताहि बिगारै ॥ ये नर० ॥ ४ ॥

॥ अध्याय १८ प्रारम्भ ॥

॥ लांवणी ॥

॥ राग उझाज । ताल तेवरा ॥

हस्ताई ॥ सब गीताको सार कृष्ण अरजनकूँ समुझावै । भेद भरमकूँ छेदि ग्यान नीकी विधि उपजावै ॥ अन्तरा ॥ अरजन पूछै त्याग कहा संन्यास कोन कहिये । दयासिन्धु करुणाकर मोपैं कृपादीठि लहिये ॥ हरि कहै

काम्यको त्याग तात संन्यास लेंइ मानी । कर्मफलनको त्याग साग है ऐसैं पहिचानी ॥ तजे दोष जुत कर्म यहै कोई पण्डित मानैं । यज्ञ दान तप तजै नाँहि ऐसैं कोई जानैं ॥ यों कहि अरजनकूं हरि अपनें मतकूं दरसावै । भेद भरम० ॥ सव० । भेद० ॥ १ ॥ निश्चय मेरो कहूं त्याग है तीन भाँति भाई । यज्ञ दान तप करै तजै नहिं ऐसैं चित लाई ॥ यज्ञ दान तप चित्तशुद्धिके हेतु जानि भाई । फलकी चाह निवारि करै मेरो मत परिचाई ॥ करि हूं निश्चित ये मत मेरो चित माहीं धारै । नियत कर्मको साग चित्तमैं कव हू नहिं डारै ॥ नियत कर्मको साग मोहतैं तामस कहलावै । भेद भरम० ॥ सव० । भेद० ॥ २ ॥ श्रम लखि तनकूं कर्म दुःखतैं ज्यो कोई त्यागै । वो है राजस त्याग ताहि फल वाको नहिं लागै ॥ करि हों यों मत धारि पुरुष ज्यो नियत कर्म करतो । त्यागि सङ्ग फल कर्म नाम वो सात्त्विक यों धरतो ॥ गहिकैं सात्त्विक त्याग वैर आसक्ति नाँहि लावै । छेदि सकल सन्देह ज्ञान हो परपद वो पावै ॥ त्यागि कर्मफल पुरुष जगतमैं त्यागी कहलावै । भेद भरम० ॥ सव० ॥ भेद० ॥ ३ ॥ देह धारिकैं सकल कर्मको त्याग कठिन जानों । है अनिष्ट अरु इष्ट मिश्र कर्मनके फल मानों ॥ जाकै नाँहीं त्याग वहै फल वाकै हो भाई । त्यागी नरतैं सकल कर्मफल निश्चय हटि जाई । देह १ दैव २ कर्ता ३ इन्द्रियगण ४ प्राणकर्म ५ लेखी । सकल कर्मकी सिद्धि माँहि यह पाँच हेतु देखी ॥ पाँच हेतुतैं कर्म वचन मनके उतपति पावै । भेद भरम० ॥ सव० । भेद ॥ ४ ॥ पाँच हेतुकूं सागि असँग आतम करता०जानैं । वेद गुरू उपदेश हीन वो दुरमतिकूं आनैं ॥ अहङ्कार जाकै

नहिँ जाकी मति नः लेप पावै । सकल जगतकूँ मारि न मारै नहिं वन्धन आवैं ॥ जानन हारो १ ग्यान २ जाननैं जोगि ३ तीनिं माँहीं । कहै कर्मविधि वेद ओरसैं भेटत है नाँहीं ॥ करण कर्म करताके माँहीँ करम हि दरसावै । भेद भरम० ॥ सव० । भेद० ॥ ५ ॥ ज्ञान कर्म कर्ता यह गुण करि तीन भाँति होई । कहे सांख्यके माँहि कहूँ सो नीकी विधि जोई ॥ सात्त्विक वो है ग्यान सकलमैं एक भाव देखै । सवमैं भेद न भेद वहाँ वाकूँ अव्यय लेखै ॥ सव भूतनमैं आतम नाना जा करि दरसावै । राजस है वो ग्यान कृष्ण ऐसी विधि फुरमावै ॥ सात्त्विक राजस दोय ग्यान कहि तामस वतलावैं । भेद भरम० ॥ सव० । भेद० ॥ ६ ॥ एक कार्यमैं पूरणमतिकूँ जा करि नर धारै । युक्ति ओर परमार्थ रहितमैं लगत नित्य लारै ॥ ये है तामस ग्यान कर्म अव तीन भाँति कहतो । नियत कर्म सँग त्यागि कियो नहिं राग रोष गहतो ॥ वो है सात्त्विक कर्म जहाँ फल चाह नाँहिं होई । वाकूँ राजस जानि अहंता काम जहाँ जोई ॥ जाके करनैं माँहि परिश्रम पुरुष वहुत पावै । भेद भरम० ॥ सव० । भेद० ॥ ७ ॥ जामैं पातक पुण्य वित्तकी हानि नाँहिं देखी । मोह धारिकैं कियो जहाँ उद्यम गति नहिं लेखी ॥ वो है तामस कर्म तीनविध कर्ता समुझावै । तजै अहंता सङ्ग ओर धीरज चितमैं लावै ॥ सिद्धि असिद्धी माँहि विकार न जाकै चित होई । सात्त्विक करता कहै ताहि पण्डित ऐसैं जोई ॥ राजस करता अवैं कृष्ण अरजनकूँ दरसावै । भेद भरम० ॥ सव० । भेद० ॥ ८ ॥ राग धरै फल कहै कर्मको लोभ चित्त धरतो । हिंसारत शुचिता जिहिं नाँहीं हर्ष शोक करतो ॥ राजस कर्ता वहै अवै हरि

तामस दरसावै । है विवेक करि शून्य सावधानी ज्यो नहिं लावै ॥ शक्ति छिपावै नमैं नाँहि आलस चितमैं धारै । शोकशील अतितुच्छ काममैं समय वहुत टारै ॥ यौं कहि तामस कर्ता मति धृति तीन भाँति गावै । भेद भरम० ॥ सव० । भेद० ॥ ९ ॥ वन्ध मोक्ष भय अभय प्रवृत्ती अरु निवृत्ति जानैं । सात्त्विक मति सो जानि धर्म अधरमकूँ ज्यो मानैं ॥ अर्थ लखै विपरीत सकल वो तामस मति कहिये । धर्म अधर्म अकारज कारज संदेह हि लहिये ॥ वो राजस मति जा करि मन असु इन्द्रिय सव रोकै । योग धारि धृति जानि सात्त्विकी परै नाँहि धोकै ॥ सात्त्विक धृति वतलाय राजसी धृति अव वतलावै । भेद भरमकूँ० ॥ सव० । भेद० ॥ १० ॥ जा धृति करि नर धर्म अर्थ अरु काम धारि लेई । धारै फलकी चाह राजसी धृति लखि चित देई ॥ शयन शोक भय खेद और मद जा करि नहिं त्यागै । सो तामस धृति सुख हू ऐसैं तीन भाँति जागै ॥ सात्त्विक सुख अभ्यास कियेंतैं जामैं रति होई । होय दुःखको अन्त आदिमैं लागत विष जोई ॥ लगत अमृतसो पाक माँहि ग्यानीकै दृग आवै । भेद भरम० ॥ सव० । भेद० ॥ ११ ॥ राजस सुख वो जानि अमृतसो आदि माँहिं भासै । अन्त माँहिं विष होय विषयतैं हीं ज्यो परकासै ॥ निदरा आलस पाय होय ज्यो आतमकूँ मोहै । सो तामस सुख जानि गुणनतैं छुट्यो जगत को है ॥ देव असुर किन्नर नर सारे तीन गुणन माँहीं । भ्रमत रहत निस दिवस परम पद पावत है नाँहीं ॥ च्यारि वर्णके धर्म भिन्न करि अव हरि दरसावै । भेद भरम० ॥ सव० ॥ भेद० ॥ १२ ॥ शम दम तप अरु शौच छमा सीधापन यह जानी । ज्ञान और विज्ञान लोक पर निष्ठा पहिचानी ॥

यह विंप्रनको धर्म शूरपन ओर धीरताई । चतुरपनों जुद्ध माँहि न भागन दान करन भाई ॥ दण्ड करणकी शक्ति छत्रको यहै कर्म गायो । वैश्य कर्म खेती गोरक्षण क्रय विक्रय पायो ॥ शूद्रधर्म तीनूंकी सेवा यों हरि वतलावै । भेद भरम० ॥ सव० । भेद० ॥ १३ ॥ अपनें अपनें कर्म तात यह च्यारि वर्ण सेई । लहैं सिद्धि जिहिं भाँति कहूँसो मनिये चित देई ॥ जातैं सव जग होय जगतमैं ज्यो व्यापक गायो । अपनों अपनों कर्म करन तिंहि पूजन वतलायो ॥ ऐसैं हरिकूँ पूजि सिद्धिकूँ सहज पुरुष पावै । स्वधरम विगुण हु त्यागि सगुण हू परधर्म न धावै ॥ अपनों कर्म करत नरकै नाँहि पातक लिपटावै । भेद भरम० ॥ सव० । भेद० ॥ १४ ॥ अपनों कर्म सदोष देखि हू नर नाँहीं त्यागै । सव जगके आरंभन माँहीं दोष तात आगै । तजि आसक्ति जीति मन इच्छा तजि संन्यास करै । वो ही नर या जगकै माँहीं चितकी शुद्धि धरै ॥ चित्तशुद्धिकूँ पाय ब्रह्मकूँ जा विधितैं पावै । सो विधि यों समुझाय चित सन्देह न उपजावै ॥ हरि करिकैं संक्षेप ग्यानकी निष्ठा दरसावै । भेद भरम० ॥ सव० । भेद० ॥ १५ ॥ शुद्धवुद्धिकूँ धारि पुरुष धीरज धरि मन रोकै । तजि विषयनको सङ्ग वैर हित माँहि न मन झोंकै ॥ शुद्ध देशमैं रहै अशन तन धारन जोगि गहै । ध्यानयोगरत रहै मौन वैराग हि चित्त लहै ॥ अहंकार वल दर्प काम अरु कोप नाँहिं जोवै । ममता देय निवारि शान्ति गहि ब्रह्मरूप होवै ॥ ब्रह्मरूपकूँ पाय सोच इच्छा यह विनसावै । भेद भरम० ॥ सव० । भेद० ॥ १६॥ सव भूतनमैं एकवुद्धि पर भक्ति लहावै है । जानि भक्तितैं मोइ पुरुष मोमय हो जावै है ॥ सव कर्मनकूँ करै

आँसरो मेरो ही राखै । कृपा पाय मो नित्य अचल पद पावै हरि भाखै ॥ सब कर्मनकूँ तात मोइ तू अरपन करि देई । बुद्धियोग करि मोमैं चित धरि अचल सिद्धि लेई ॥ सकल कष्ट मोमैं चित धारैं सहज हि विनसावै । भेद भरम० ॥ सब० । भेद० ॥ १७ ॥ अहंकार करि वचन माँभि है नाँहीं ज्यो मेरो । लहि है नाश न रक्षक कोई जग माँहीं तेरो ॥ लरि हूँ नाहिं यहै निश्चय तू मिथ्या करि जानी । प्रेरण करि है प्रकृति तोइ यह चित माँहीं आनी ॥ क्षत्रिय तोकूँ कियो शूरपन दियो कर्म ज्योई । ज्यो न कियो चाहै करि है सो ताके वश होई ॥ जैसे कर्म करै पूरव नर तैसी मति आवै । भेद भरम० ॥ सब० । भेद० ॥ १८ ॥ सब भूतनके हृदय माँहिं हरि है अरजन जानौं । प्रेरण वो कर रह्यो भ्रमत जग यातैं यों मानौं ॥ सर्व भाव करि शरण आँसरो ताको तू गहि है । पाइ कृपा ताकी गहि शम पर पद निश्चय लहि है ॥ यहै ज्ञान अति गुप्त तात मैं तोकूँ समुझायो । नीकैं लेहु विचारि करहु ज्यो तेरै मन भायो ॥ या विध कहिकैं ज्ञान फेर हरि ऐसैं फुरमावै । भेद भरम० ॥ सब० भेद० ॥ १९ ॥ अब तात अति गुप्त वात मैं तोइ वतावूँ हूँ । तू है प्यारो मित्र सुनहु यातैं समुझावूँ हूँ ॥ मोमैं मन धरि भक्ति यज्ञ करि मेरे ही काजै । मोकूँ लहि है यहै प्रतिज्ञा साँची मो राजै ॥ सब धर्मनकूँ त्यागि शरण तू मेरी गहि लेई । छुटि जैहै सब पाप शोकमैं तनक न चित देई ॥ यों कहि गीता श्रवण पाठको फल हरि वतलावै । भेद भरम० ॥ सब० । भेद० ॥ २० ॥ ज्यो नर नीकी भाँति आपको धर्म नाँहिं साधै । करै न हरिकी भक्ति गुरुकूँ ज्यों नहिं आराधै ॥ श्रवण चाह जाकै न ईरषा जाकीं मो माँहीं ।

गीताके उपदेश माँहिं वो अधिकारी नाहीं ॥ ज्यो नर मेरी भक्ति धारि गीताको ग्यान कहै । मेरे भक्तन माँहिं वहै नर निश्चय मोंइ लहै ॥ प्रियकर्त्ता ता सम नहिं मेरै यों हरि फुरमावै । भेद भरम० ॥ सव० । भेद० ॥ २१ ॥ प्यारो ता सम नाँहिं होअगो जगत माँहिं मेरै । गीताके उपदेश काज ज्यो भक्तनकूँ हेरै ॥ ज्यो गीताको पांठ नित्य उठि करि है चित लाई । ज्ञान यज्ञ करि मेरो पूजन वो करतो भाई ॥ सरधा गाढी धारि चित्तमैं दोष दीठि त्यागि । गीताको उपदेश सुनैं मेरे पद अनुरागै ॥ सव पापनतैं छूटि वहै नर पुण्य लोक पावै । भेद भरम० ॥ सव० । भेद० ॥ २२ ॥ नीकैं वोध न भयो होय तो यह मोकूं कहिये । पुनि देवूं उपदेश चित्तमैं थिरताकूँ लहिये ॥ ज्यो अवोध करि मोह चित्तमैं नाश नाँहिं पायो । तो तेरै उपदेश चित्तमैं नीकैं नहिं आयो ॥ अरजन ऐसैं कहै मोह हत भयो चेत आयो । कृपा दीठिकूँ पाय रावरी भ्रम सव विनसायो ॥ वो सव करि हूँ वचन आप ज्यो मुखतैं फुरमावै । भेद भरम० ॥ सव० ; भेद० ॥ २३ ॥

॥ पद ॥

॥ राग विहाग । ताल तिताला ॥

हस्ताई ॥ संजय कुरुपतिकूँ समुझावै । अपनों निश्चय ताहि वतावै ॥ **अन्तरा** ॥ यह संवाद सुन्यों ज्यो अद्भुत। सुमरत मो तन रोम उठावै ॥ व्यास कृपातैं याकूं सुनिकैं । मेरे चित आनन्द वढावै ॥ संजय० ॥ १ ॥ जोगेसुर हरि जोग वतायो । सुमरि ताहि आनन्द न मावै ॥ विश्वरूपकूँ याद करत ही । मेरो मन इचरजकूँ पावै ॥ संजय० ॥ २ ॥ जहाँ कृष्ण है आंप सहाई । अरजन करमैं धनुष धरावै ॥ विजय

श्रुति लक्ष्मी सुत्र मिलिकैं। निस बासर तिहिं थान वसावै॥ संजय० ॥ ३ ॥ दुरयोधन अज हू ज्यों सहुझै । जाय कृष्ण पद सीस नवावै ॥ दो कर जोरि करै विनती यह। तो सारो कुरुवंश बचावै ॥ संजय० ॥ ४ ॥

॥ उपदेशामृतघटी अध्याय १८ समाप्त ॥

॥ समाप्तिमङ्गलपद ॥

॥ राग सोरठ । ताल तिताला ॥

हस्ताई ॥ सुनि नर मङ्गल भगवत गीता २ । सुरदुरलभ यह नर तन पाकैं। जिन रहि जावै रीता ॥ सुनि० ॥ ॥ अन्तरा ॥ परम मन्त्र गीताकूँ सुनिकैं। भरम भूत ज्यो जीता ॥ जीव.ईशको भेद छेदिकैं जीवन मुकति गहीता ॥ सुनि नर० ॥ १ ॥ इन विषयनकी चाह करत ही । बहुत वरष तो वीता ॥ जब हिसाब परि है जम पासै। तव तेरो को मीता ॥ सुनि नर० ॥ २ ॥ पाप पोट सिर नित ही वाढत । तनक न होवै भीता ॥ ज्यो न चेति है यह तन पाकैं । व्है है जनम फजीता ॥ सुनि नर० ॥३ ॥ गोपीनाथ यहै गीता रचि । कृष्ण चरन अरपीता ॥ कृष्ण कृपातैं ग्यान पायकैं ॥ जगतैं भयो नचीता ॥ सुनि नर० ॥४॥

॥ पद ॥

॥ राग सोरठ । ताल तिताला ॥

हस्ताई ॥ जय जय मङ्गलमय जदुराई २ । ज्यो अरजनपैं कृपादीठि करि । आतम गति दरसाई ॥ जय जय० ॥ अन्तरा ॥ वेद उदधि मथि मति मन्दरतैं । गीता अमृत उपाई ॥ श्रुति पुट अरजन चपक बनाकैं । पायो ताहि छकाई ॥ जय जय० ॥ १ ॥ योग साधि योगीजन जाकी। गति तनक हु नाहिं पाई ॥ सो ब्रज भूमि नन्द घर वसिकैं।

वन वन धेनु चराई ॥ जय जय० ॥ २ ॥ जाकूं लख न सके ब्रह्मादिक । बहु विध जतन धराई । सो जसमतिसैं माखन माग्यो । बाल चरित दिखलाई ॥ जय जय० ॥३॥ अजित ग्यान ज्यो चाहै पूरण । मारग नाथ बताई ॥ तनमय होय ताहि लखि लीजे । भेद न तनक गहाई ॥ जय जय० ॥ ४ ॥

॥ पद ॥

॥ राग सोरठ । ताल तिताला ॥

हरताई ॥ धन्य हमारो भाग । जगमैं धन्य हमारो भाग ॥ एते घोस नीदमैं काढे, अब आयो हूँ जाग ॥जगमैं० ॥ अन्तरा ॥ उतपति नाश जगतको लखिकैं । गई विषयकी लाग ॥ चाह तजी मन सारी यातैं । रह्यो न तन राग ॥ जगमैं० ॥ १ ॥ ज्ञान अमृत बरष्यो है यातैं । बुझी भेदकी आग ॥ धन्य ईश गुरु वेद लखे मैं । मेट्यो मनको दाग ॥ जगमैं० ॥ २ ॥ गीताको उपदेश सुनतही । जुप गइ ग्यान चिराग ॥ मोह तिमिरको नाश भयो है । दरस्यो आनँद बाग ॥ जगमैं० ॥ ३ ॥ ज्ञान लहैं नर देवदेव है । नाँतर है सुरछाग ॥ अजित ग्यानकी नाव बनावै । लखि भवसिन्धु अथाग ॥ जगमैं० ॥ ४ ॥

॥ दोहा ॥

॥ उगणींसै चालीसको । संवत सावणमास ॥ शुक्ल दोज रविवारकूं । भयो ग्रंथ परकास ॥ १ ॥

॥ श्रीः ॥

इति श्रीजयपुरीयसँस्कृतपाठशालाध्यापकश्रीदधीचिवंशोद्भवपण्डितगोपीनाथविरचितायाम् उपदेशामृतघट्याम् विज्ञानविषयः समाप्तः ॥

॥ शुभम् ॥

॥ पद ॥

॥ राग खमावच । ताल ३ ॥

हस्ताई ॥ विन विन मोहिकूँ कछु न सुहावै । तरफत चित अति ही अकुलावै ॥ अन्तरा ॥ एरी सखी हमरे पीतमकौं । जाय कोई यह वात सुनावै ॥ यह जोवन छीजत है छिन छिन । वीत गयें पर फिर नाहिं आवै ॥ विन विन० ॥ १ ॥ वहुत कोल वीते आवनके । गिनत गिनत जियरा घवरावै ॥ हाय दया अँखियाँ तरसत है । विरह विपत नित मोहि जरावै ॥ विन विन० ॥ २ ॥ मरन न देत आस मिलवेकी । जीवन छिन विन विन नाहिं भावै ॥ सुध बुध सव ही भूल गई री । यह दुख तो अव सह्यो न जावै ॥ विन विन० ॥ ३ ॥ मतलवकी गरजी जग सारो । अरजी मोरी कोन सुनावै ॥ तन मन जीति रीति सव करिकैं । भजिहूँ राम काम वनि आवै ॥ ४ ॥ हे जगदीश ईश विश्वंभर । तुमविन यह दुख कोन मिटावै ॥ करी कृपा करुणानिधि मोपैं । मिले पिया जिय हरष न मावै ॥ विन विन० ॥ ५ ॥ ग्यानी याहि ग्यान करि देखै । रसिक याहि रसपच्छ लगावै ॥ जोग भोग गति दोय एक करि । सुमति अजितपद सहज वतावै ॥ विन विन० ॥ ६ ॥

॥ पद ॥

॥ राग भैरवी । ताल ३ ॥

हस्ताई ॥ अव पिव पायो री मेरो । मैं तो कीन्हो वहुत ढुंढेरो ॥ अन्तरा ॥ दृढ विरागको प्रिलँग विछायो । धीरज कटक पछेरो ॥ सुरता महल सज्यो चहुँ वोरी । दीपक ग्यान उजेरो ॥ अव पिव० ॥ १ ॥ करुणा आदि सखी चहुँ वोरी । आनँद भयो घनेरो ॥ भेद दीठि वह

सोति मरी तब । मिल गयो घरकै नेरो ॥ अब पिव० ॥ आ ताहि रिझाय करूँगी अपनों । अपनों आपो हेरो ॥ नाँहीं गिनूँ लगन निस वासर । नाँहीं साँझ सवेरो ॥ अब पिव० ॥ ३ ॥ खुद मस्ती मद प्यालो पीयो । दूजो भयो न फेरो ॥ घिलमिल होकैं रँगमैं छाकी । मेरो रह्यो न तेरो ॥ अब पिव० ॥ ४ ॥ ॥ शुभम् ॥

सूचना.

पण्डित गोपीनाथजीनैं सन्तोषपञ्चाशिका १ नीतिदृष्टान्तपञ्चाशिका २ प्रधानरसपञ्चाशिका ३ वृत्तचिन्तामणि ४ सँस्कृतटिप्पिणी तथा भाषाटीकीं इन करिकैं युक्त रामसौभाग्यशतक ५ शिवपदमाला ६ सटीक स्वानुभवाष्टक ७ ये तो सँस्कृतग्रन्थ वनाये हैं ओर उपदेशामृतघटी १ स्वराष्टप्रत्यय २ स्वानुभवसार ३ ये भाषाग्रन्थ वनाये हैं इनमैं शिवपदमाला तो जयपुरके यन्त्रालयमैं मुद्रित भई है ओर सटीक स्वानुभवाष्टक मु. मुम्बई निर्णयसागराधिपति जावजी दादाजीनैं स्वोत्साहसैं मुद्रित किया है ओर उपदेशामृतघटी महाराज खेतडी श्री १०८ अजितसिंहजी बहादुरकी आज्ञातैं मुद्रित भई है ओर रामसौभाग्यशतककूँ ठाकूर साहव हरिसिंहजी मुद्रित कराणेंकां उत्साह कर रहे हैं ओर शेष ग्रन्थवी यथावकाश यथासहायसंपत्ति मुद्रित होंगे इनमैं स्वानुभवसार अतिविचित्र ग्रन्थ हैं इसकी सङ्ख्या अनुमान ९८०० है इसके प्रथम भागमैं न्यायका मत अद्वैत सिद्ध किया है ओर द्वितीयभागमैं अविद्याकी असिद्धिका प्रतिपादन है ओर तृतीयभागमैं वृत्तिज्ञानका खण्डन है ऐसैं अद्वैतमत सिद्ध किया है सो वेदान्तरसिक पुरुष ग्राहकतामैं उत्साह प्रकट करैंगे तो यह वी मुद्रित हो जायगा अलम्.

शुद्धिपत्र.

पृष्ठ	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
३	१६	को एक	को । एक
४	५	लीजे बेही	लीजे । बेही
४	१५	नृपतिको ० ॥ अधरमतैं	नृपतिको ०॥२७॥अधरमतैं
१०	१४	कर्मन	कर्म न
११	३	दिन	
२०	१७	होई	होइ
२६	२५	लाई कृष्ण	लाई । कृष्ण
२६	२६	ब्रह्म ॥ १ ॥	॥ १ ॥
२८	३	जानि । पुरुष	जानि ॥ पुरुष
२८	१६	ज वमैं	जव मैं
३१	१	भोज नमैं	भोजन मैं
३२	१	तात	
३३	२५	वामनल्यो	वामन ल्यो
३४	१९	वादवादिनमैं	वाद वादिनमैं
३५	२	० यास	व्यास
३७	२४	नरएति	नरपति
३८	२	एवरो	रावरो
४०	१२	माँहीं	माँहिं
४०	१२	वसै	वसैगो
४५	२०	ऐसैं	ऐसैं वचन
४६	३६	। ढकावै	ढकावै ।
५२	५	मासो	मारचो
५४	१८	जगमैं राजस	जगमैं । राजस
६०	१८	शुद्धवुद्धिकैं	शुद्धवुद्धिकूँ